सोए लोगों को जगाने के लिए

कलरव

ताकि बना रहे अहसास

सितम्बर, 2006, मूल्य : 10 रुपए

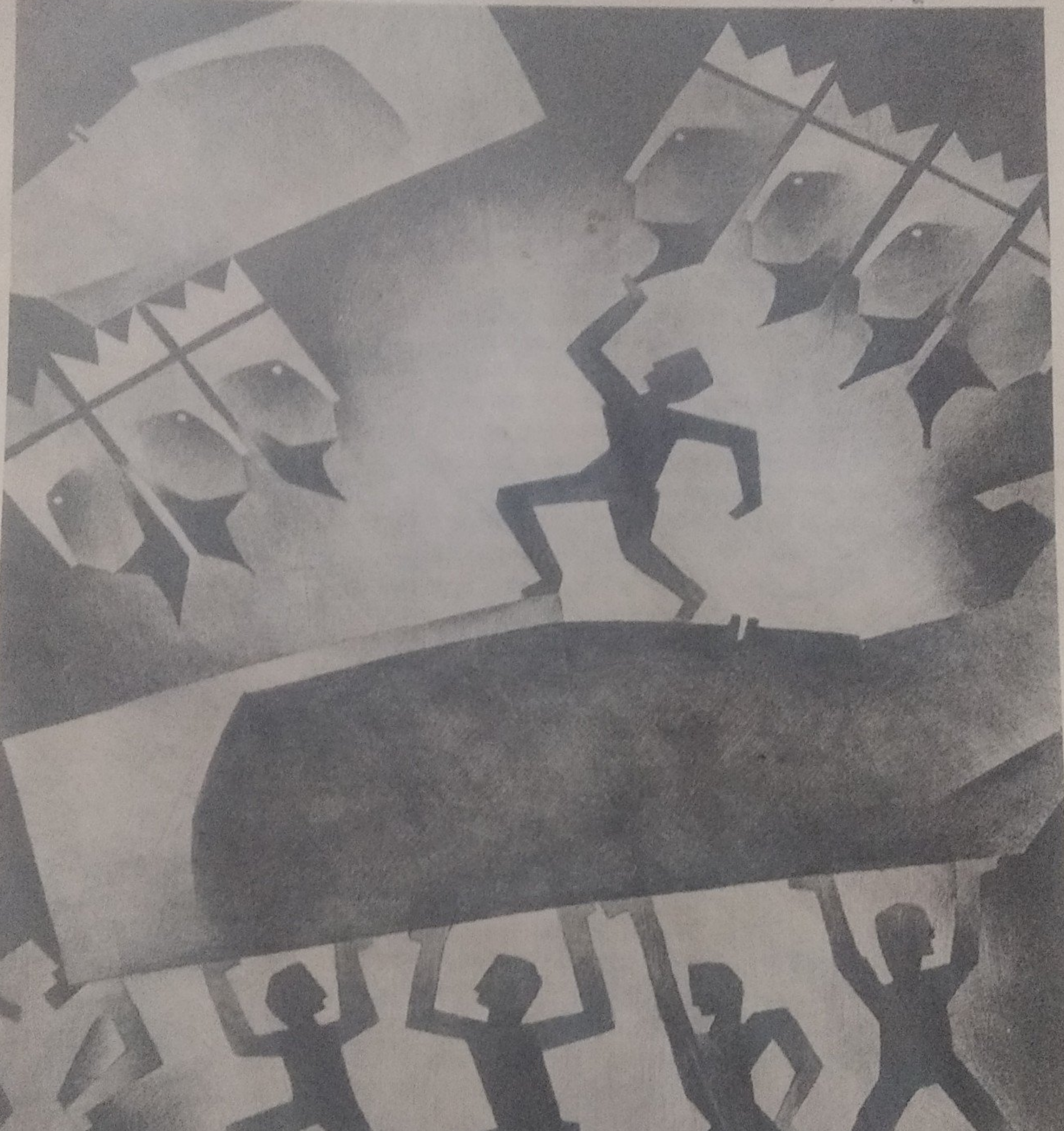

स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

... समर शेष है

ढीली करो धनुष की डोरी, तरकश का कस खोलो
किसने कहा युद्ध की बेला गई, शांति से बोलो ?
किसने कहा, और मत बेधो हृदय वह्नि के शर से
भरो भुवन का अंग कुमकुम से, कुसुम से, केसर से ?
कुमकुम ? लेपूं किसे ? सुनाऊं किसको कोमल गान ?
तड़प रहा आंखों के आगे, भूखा हिंदुस्तान।
फूलों की रंगीन लहर पर वो उतराने वाले
ओ रेशमी नगर के वासी वो छवि के मतवाले
सकल देश में हालाहल है दिल्ली में हाला है
दिल्ली में रोशनी, शेष भारत में अंधियाला है
मखमल के परदों के बाहर फूलों के उस पार
ज्यों का त्यों है खड़ा आज भी, मरघट सा संसार
वह संसार जहां पर पहुंची, अब तक नहीं किरन है
जहां क्षितिज है शून्य अभी तक अंबर तिमिर-वरण है
देख जहां का दृश्य आज भी अंतस्तल हिलता है
..... ो लज्जा वसन और शिशु को न छीर मिलता है
पूज रहा है जहां चकित हो जन जन देख अकाज,
सात वर्ष हो गए राह में अटका कहां स्वराज
अटका कहां स्वराज बोल दिल्ली तू क्या कहती है
तू रानी बन गई वेदना जनता क्यों सहती है
सबके भाग्य दबा रखे हैं किसने अपने कर्म
उतरी थी जो विभा हुई वंदनी बता किस घर में
समर शेष है यह प्रकाश बंदी गृह से छूटेगा
और नहीं तो तुझ पर पापिनि महावज्र टूटेगा
समर शेष है इस स्वराज को सत्य बनाना होगा
जिसका है यह न्यास उसे सत्वर पहुंचाना होगा
धारा के मग में अनेक पर्वत जो खड़े हुए हैं
गंगा का पथ रोक इंद्र के गज जो अड़े हुए हैं
कह दो उनसे झुके अगर तो जग में यश पाएंगे
अड़े रहे तो ऐरावत पत्तों से बह जाएंगे
समर शेष है जन गंगा को खुलकर लहराने दो
शिखरों को डूबने और मुकुटों को बह जाने दो
पथरीली ऊंची जमीन है तो उसको तोड़ेंगे
समतल पीटें बिना समर की भूमि नहीं छोड़ेगे
समर शेष है चलो ज्योतियों के बरसाते तीर
खंड-खंड हो गिरे विषमता की काली जंजीर
समर शेष है अभी मनुज भक्षी हुंकार रहे हैं
गांधी जी का पी रुधिर, जवाहर पर फुंकार रहे हैं
समर शेष है अहंकार इनका हरना बाकी है
वृक को दंतहीन अहि को निर्विष करना बाकी है
समर शेष है शपथ धर्म की लाना है वह काल
विचरें अभय देश में गांधी और जवाहर लाल
तिमिर पुत्र ये दस्यु कहीं कोई दुष्कांड रचें ना
सावधान हो खड़ी देश भर में गांधी की सेना
बलि देकर भी बली स्नेह का यह मृदु व्रत साधो रे
मंदिर औ मसजिद दोनों पर एक तार बांधो रे
समर शेष है नहीं पाप का भागी केवल व्याघ्र
जो तटस्थ हैं समय लिखेगा उनका भी अपराध।

♦ रामधारी सिंह दिनकर

सितम्बर, 2006, वर्ष : 1, अंक : 1

इस अंक में — पृष्ठ

● मुख्य लेख
आजादी का दिवास्वप्न 4-6
आर्थिक सुधारों की तस्वीर 4-6
पंडित जवाहर लाल नेहरू ने क्या कहा था........ 6-7
पूर्ण स्वराज की घोषणा का प्रस्ताव 6-7
ताकि भूल न जाए अपनी विरासत 7-9
मीडिया की भूमिका 9-10
जलियांवाला बाग का हत्याकांड 10

● साक्षात्कार
आंदोलन में महिलाओं की भूमिका 11-12
जो अग्रिम मोर्चे पर रहीं 11

● आधी दुनिया
स्त्रियों की स्वाधीनता 13-15

● यादगार
अमर शहीद बिस्मिल का अंतिम संदेश........ 16-17
अशफाक उल्ला का देशवासियों के नाम खत........ 18-19
राम कृष्ण और विवेकानंद 19
गांधी जी के नाम खुली चिट्ठी 20-21
स्वाधीनता संग्राम से क्या मिला 21

● लेख
आत्म निर्णय और भारतवर्ष 22-23

● संग्राम
रोहतक में बगावत 24-25

● लेख
गांधी धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता........ 26-28

● रूपहला परदा
फिल्मों में आजादी का जुनून 29
जो नहीं होना था 30-31
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 31

● कहानी
जेल में जिंदगी 32-34
डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन 35

संपादक : श्रीमती शोभा तिवारी
कानूनी सलहकार : इन्दु प्रकाश सिंह, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद व त्रिपुरारी राय, वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्चतम न्यायालय
उप संपादक : रुचिर कुमार, संध्या शुक्ला
प्रसार व्यवस्थापक : शिवेंद्र, ओम प्रकाश

स्वामी, मुद्रक व प्रकाशक अनिल तिवारी द्वारा अक्षर भारत लिमिटेड, सी-9, सेक्टर-3, नोएडा से मुद्रित व प्रकाशित
कार्यालय : 93ए, अरावली अपार्टमेंट, सेक्टर-52, नोएडा, गौतमबुद्धनगर (उ.प्र.)
फोन : 0120-2585565, 9810645159

सदस्यता शुल्क

एक प्रति	10.00 रु.
वार्षिक	100.00 रु.
आजीवन	5000.00 रु.

पत्रिका में प्रकाशित लेख से संपादक/कलरव की सहमति आवश्यक नहीं है.

पत्रिका से संबंधित किसी भी विवाद का निपटारा माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के क्षेत्राधिकार में किया जा सकेगा.

एक और वर्षगांठ

स्वतंत्रता दिवस की वर्षगांठ मनाने की एक और रस्म अदायगी हमने पूरी कर ली। वही सब कुछ हुआ जो हर साल होता है। वादे दर वादे और सब्जबागों की फेहरिस्त। देश को औपचारिक रूप से आजादी मिलने के कुछ घंटे पहले हमारे प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने गरीबी और अशिक्षा को खत्म करने की कसम खाई थी। उनके बाद उनकी बेटी इंदिरा गांधी ने चुनाव जीतने के लिए गरीबी हटाने का नारा दिया था और आज भी हमारे नेता गरीबी दूर करने की कसमें खाते रहते हैं। शायद यह नेताओं की पसंद का खाना है, इसीलिए साठ साल से इसे खा रहे हैं और आगे भी खाते रहेंगे। शतरंज के मोहरों की तरह गरीब, अनुसूचित जाति, पिछड़े, मुसलमान और महिलाओं का इस्तेमाल किया जाता है। वक्त की नजाकत और अपने चुनावी गणित के हिसाब से पार्टियां कभी गरीबों, कभी अनुसूचित और पिछड़ी जातियों, तो कभी मुसलमानों और कभी महिलाओं के मुद्दों को आगे-पीछे करती रहती हैं। सत्ता सुख के लालच में पतित हो चुके हमारे ज्यादातर नेता यह भूल जाते हैं कि ये मुद्दे नहीं बल्कि जीते-जागते इंसान हैं। इनका कल्याण तभी हो सकता है जब हमारे राजनेता इनके कल्याण के बारे में सोचना और बोलना बंद कर दें।

लेकिन जब मुद्दों पर यानी असली मुद्दों पर बात करने का मौका आता है तो हमारे नेता खोजे नहीं मिलते हैं। आतंकवाद से बड़ा मुद्दा और क्या हो सकता है। हाल में हुए मुंबई बम कांड के बाद जब लोकसभा में इस पर बहस का समय मुकर्रर हुआ तो पता चला कि लोकसभा खाली है। पांच सौ सांसदों में से कुल तीस-पैंतीस सांसद उपस्थित थे। बाकी अपने हित साधने या मौज-मस्ती में व्यस्त थे। इससे स्पष्ट है कि आतंकवाद जैसे मुद्दे पर हमारे नेता कितने गंभीर हैं। आतंकवाद पर बहस के समय सांसदों का गायब रहना खुद आतंकवाद से ज्यादा गंभीर मामला है। दरअसल लगता है अमेरिका के रूप में हमें एक नए आका मिल गए हैं। हमने आतंकवाद का हल निकालने का जिम्मा भी जार्ज बुश पर छोड़ दिया है। चुनाव जीत कर आने के बाद हमारे कम से कम अस्सी फीसदी सांसद-विधायक भ्रष्ट नौकरशाही और पूंजीपतियों की मदद से लूट-खसोट में जुट जाते हैं। ये लोग खुद कुछ नहीं करते, लेकिन श्रेय लेने में सबसे आगे होते हैं। मुंबई बम कांड के बाद जब पूरे मुंबई महानगर के लोग एक इंसान की तरह खड़े हो गए, तो नेताओं ने इसे इस तरह से प्रस्तुत किया जैसे उनके नेतृत्व में ही लोगों में एकता की यह अद्भुत भावना जागृत हुई है। इन्हें शर्म भी तो नहीं आती। जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक नित्शे का कहा था कि लोकतंत्र में नेता वही बन सकता है जो बेईमान हो और जिसके पास नैतिकता जैसी कोई चीज न हो। नित्शे के पूरे दर्शन से तो सहमत नहीं हुआ जा सकता, लेकिन लोकतंत्र और नेताओं के बारे में उनके विचार काफी सही लगते हैं।

शायद हमने कभी सही ढंग से अजाद होना ही नहीं चाहा है। अगर चाहा होता तो हमें आजादी का सही अर्थ और सही कीमत का भी ज्ञान होता। आजाद होने के बाद भी हम ब्रिटिश कामनवेल्थ के मेंबर नहीं बने रहे होते। कुत्ते को जंजीर से आजाद कर दिया जाए फिर भी उसके गले में बेल्ट लगा रहता है। कामनवेल्थ की सदस्यता भी वही बेल्ट है जिसे हम आज भी गर्व से पहने हुए हैं। कामनवेल्थ, ब्रिटेन और उसके गुलाम रह चुके देशों का संगठन है। अगर हम में स्वाभिमान होता तो हम कामनवेल्थ कब का छोड़ चुके होते। नेहरू, शास्त्री, इंदिरा गांधी से लेकर चंद्रशेखर और अटल बिहारी वाजपेयी तक, किसी ने भी कामनवेल्थ छोड़ने की हिम्मत नहीं दिखाई, क्योंकि हम ब्रिटिश सिंहासन को नाराज करने का जोखिम नहीं उठाना चाहते।

आजादी का दिवास्वप्न

भारत को आजाद हुए छह दशक हो रहे हैं। इन छह दशकों में हमारे देश ने अभूतपूर्व गति से तरक्की की है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नई-नई उपलब्धियां हासिल हुई हैं। कृषि के क्षेत्र में यंत्रीकरण की रफ्तार जेट विमान की गति से रही है। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के क्षेत्र के ग्रंथ तैयार हो जाएंगे। लेकिन यहां हमारा मकसद आलोचना विवेक साथ इस बात की पड़ताल करना है कि समस्त संपदा के निर्माता मेहनतकश वर्ग की आजादी के इतने समय बाद हालत कैसी है और उसमें कितना सुधार आया है। इस बात से तो इनकार नहीं किया जा सकता कि अमीरी-गरीबी की तेजी से बढ़ती खाई के बावजूद आम तौर पर जन समान्य के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। लेकिन साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि स्वतंत्रता आंदोलन में नेतृत्व अगर अभिजनों के हाथ में न होकर जन नायकों के हाथ में होता और जनता की सर्जनात्मकता और कल्पनाशीलता को निर्बंध करने विकास के काम को हाथ में लिया जाता तो तस्वीर कुछ दूसरी ही होती।

इस बात से तो इनकार नहीं किया जा सकता कि अमीरी-गरीबी की तेजी से बढ़ती खाई के बावजूद आम तौर पर जन समान्य के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। लेकिन साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि स्वतंत्रता आंदोलन में नेतृत्व अगर अभिजनों के हाथ में न होकर जन नायकों के हाथ में होता और जनता की सर्जनात्मकता और कल्पनाशीलता को निर्बंध करने विकास के काम को हाथ में लिया जाता तो तस्वीर कुछ दूसरी ही होती।

प्रसंगवश, कांग्रेस के नेतृत्व में देश ने जो राजनीतिक आजादी हासिल की थी वह इस मायने में मुक्कम्मल नहीं कही जा सकती कि साम्राज्यवादी देशों पर आर्थिक निर्भरता तो फिर भी बनी हुई थी। आजादी मिलने के बाद विदेशी पूंजी और टेक्नालॉजी की दम पर नौकरशाही के नेतृत्व में विकास के काम को हाथ में लिया गया। शुरुआती दौर में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उपजी जन जागरूकता और उत्साह ने नव-निर्माण के काम में सकारात्मक भूमिका अदा की, लेकिन समय बीतने के साथ-साथ आदर्श छीजने लगे और नैतिक प्रोत्साहनों की जगह भौतिक प्रोत्साहनों ने ले ली। यह तो सर्वमान्य सत्य है कि पदार्थ से चेतना का निर्माण होता है, ऐसे में जब समस्त मानवीय गतिविधियों के केंद्र में समाज और मनुष्य न होकर माल-मुद्रा हो तो नैतिक आदर्श छीजने लगते हैं। शुचिता, नैतिकता, भारत की गौरवमयी संस्कृति की तोतारटंत करने वाले भगवा ब्रिगेड के लोगों का आंतरिक जगत कितना कलुषित-प्रदूषित और मानवद्रोही होता है, गुजरात के दंगों ने इस बात को भलीभांति उजागर कर दिया है। फासिस्ट जमातों में युवा अवस्था में राष्ट्रवाद के कुछ सकारात्मक तत्व तो होते हैं लेकिन समय बीतने के साथ अतीत मोह उन्हें मनोरोगी बनाने की ओर ले जाता है।

आजादी मिलने के बाद विदेशी पूंजी और टेक्नालॉजी की दम पर नौकरशाही के नेतृत्व में विकास के काम को हाथ में लिया गया। शुरुआती दौर में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान उपजी जन जागरूकता और उत्साह ने नव-निर्माण के काम में सकारात्मक भूमिका अदा की, लेकिन समय बीतने के साथ-साथ आदर्श छीजने लगे और नैतिक प्रोत्साहनों की जगह भौतिक प्रोत्साहनों ने ले ली।

आर्थिक सुधारों की तस्वीर

हाल ही में मशहूर पत्रिका द इकोनामिक्स ने भारत के बारे में विशेषांक निकाला था। शीर्षक था कैन इंडिया फ्लाई? मतलब एक ऐसा सवाल जो भारत कीआजादी के 59 साल बाद पूछा जाना लाजिमी है। क्या भारत उन तमाम चुनौतियों को हल कर चुका है जो उसे आजादी के वक्त मिली थीं। राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने सपना देखा है कि भारत 2020 तक दुनिया के अमीर देशों की सूची में शामिल हो जाएगा। यानि तब देश अपनी सबसे बड़ी गरीबी से छुटकारा पा चुका होगा।

राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने सपना देखा है कि भारत 2020 तक दुनिया के अमीर देशों की सूची में शामिल हो जाएगा। यानि तब देश अपनी सबसे बड़ी गरीबी से छुटकारा पा चुका होगा। जो सपना आजादी के 59 साल बाद भी पूरा नहीं हुआ क्या वह अब सिर्फ सोलह सालों में पूरा हो जाएगा?

जो सपना आजादी के 59 साल बाद भी पूरा नहीं हुआ क्या वह अब सिर्फ सोलह सालों में पूरा हो जाएगा? देखा जाए तो आज भी देश उन्हीं समस्याओं से जूझ रहा है जो उसे आजादी के साथ मिली थीं। देश की एक तिहाई आबादी आज भई गरीबी रेखा क नीचे जीने को मजबूर है। करीब 35 प्रतिशत आबादी निरक्षर है, जिनमें महिलाओं की स्थिति और भी खराब है। देश में बेरोजगारों की एक बहुत बड़ी फौज खड़ी है और इनमें कमी होने क बजाय हर साल इजाफा ही हो रहा है।

इन आंकड़ों को देखकर एक बार तो लगता है कि इतने सालों में कुछ नहीं बदला है। पर ऐसा नहीं है। तस्वीर का दूसरा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि स्वतंत्र भारत के हुक्मरानों ने जनता की पहलकदमी को जागृत करके अपने दम पर विकास के काम को हाथ में लेने के बजाय साम्राज्यवादी महा प्रभुओं से टेक्नालाजी और पूंजी की मदद ली। गौरतलब है कि आज दक्षिण एशिया के पैमाने पर अपनी दादागिरी दिखाने वाले भारतीय पूंजीपति

वर्ग की औकात आजादी के वक्त इतनी नहीं थी कि वह अपने दम पर विकास कार्यों को हाथ में लेता। यही कारण था कि प्रथम प्रधानमंत्री और सुयोग्य बुर्जुआ नेता जवाहरलाल नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनाई। जनता की गाढ़ी कमाई से आधारभूत ढांचा खड़ा किया और भारतीय पूंजीपतियों को उनकी औकात के हिसाब से उपभोक्ता सामग्री तैयार करने दिया गया और वह भी तरह-तरह की राजकीय सहायता के साथ। मेहनतकश वर्ग के खून-पसीने को निचोड़कर आज जब ये जोंकें काफी शक्तिशाली हो गई हैं तो विनिवेश के नाम पर जनता के पैसे से खड़े किए गए सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को कौड़ियों के मोल पूंजीपतियों को बेचा जा रहा है।

यही कारण था कि प्रथम प्रधानमंत्री और सुयोग्य बुर्जुआ नेता जवाहरलाल नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनाई। जनता की गाढ़ी कमाई से आधारभूत ढांचा खड़ा किया और भारतीय पूंजीपतियों को उनकी औकात के हिसाब से उपभोक्ता सामग्री तैयार करने दिया गया और वह भी तरह-तरह की राजकीय सहायता के साथ।

इसका मतलब यह नहीं कि नौकरशाही के नेतृत्व में चलने वाली मिश्रित अर्थव्यवस्था की बहाली की जाए, जो सारत: राजकीय पूंजीवाद के सिवाय और कुछ नहीं थी। यह तो मानी हुई बात है कि मेहनतकश वर्ग को वास्तव में जो कुछ मिलना चाहिए वह तो केवल तभी मिल सकता है जब उत्पादन, राजकाज और उससे संबद्ध समस्त अधिरचना पर उनका अधिकार हो। आज फिर जरूरत इस बात की है कि इतिहास को आगे की ओर गति देने वाले मेहनतकश वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाई जाए और पढ़े-लिखे शिक्षित मध्यवर्ग को अपनी ज्ञान प्रसारक की प्रारंभिक अवस्था में आना होगा तभी वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है वरना ब्रह्म राक्षस की तरह अलगाव-अकेलेपन और आत्म निर्वासन की पीड़ा व्यथा को झेलता रहेगा। हिंदी के जनपक्षधर और द्वंद्वात्मक भौतिवादी कवि मुक्तिबोध जनसंग ओम से नया संवेग प्राप्त करने की बात यूं ही नहीं करते। इन बातों पर निखना तो समय की बर्बादी है कि यह व्यवस्था अन्यापूर्ण और मानद्रोही हो क्योंकि यह बात तो हर उस मेहनतकश के लिए दिन के उजाले की तरह साफ है जिसका समाजवाद इसी व्यवस्था के भीतर सुनिश्चित नहीं है।

आज फिर जरूरत इस बात की है कि इतिहास को आगे की ओर गति देने वाले मेहनतकश वर्ग को उसके ऐतिहासिक मिशन की याद दिलाई जाए और पढ़े-लिखे शिक्षित मध्यवर्ग को अपनी ज्ञान प्रसारक की प्रारंभिक अवस्था में आना होगा तभी वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है वरना ब्रह्म राक्षस की तरह अलगाव-अकेलेपन और आत्म निर्वासन की पीड़ा व्यथा को झेलता रहेगा।

गौरतलब है कि दो सौ वर्षों की गुलामी ने् देश को उसकी जड़ों से काट दिया है। यहां का समाज यूरोप की तरह धार्मिक सुधार, पुनरुत्थान और प्रबंधन की दुर्धर्ष प्रक्रियाओं से होकर नहीं गुजरा।

पहलू भी है जो इस नाउम्मीदी के बीच आस बंधाता है। देश में अभी भी संभावनाएं बाकी हैं.....खास तौर से 1991 के बाद, जब देश में आर्थिक सुधार की प्रक्रिया शुरू की गई.....ये बढ़ी ही है। 1991 में देश क तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने आर्थिक सुधार का बीड़ा उठाया, वो भी मजबूरी में। क्योंकि उस वक्त देश आर्थिक संकट से गुजर रहा था और वित्त मंत्री के पास आर्थिक सुधार की प्रक्रिया शुरू के सिवाय और कोई चारा नहीं था। लेकिन उस वक्त मजबूरी में शुरू की गई सुधार की प्रक्रिया के फल आज मिलने शुरू हो गए हैं।

कहा जाता है कि भारतीयों को राजनीतिक आजादी तो 1947 में मिल गई थी, लेकिन उन्हें आर्थिक आजादी मिलनी शुरू हुई 1991 से और जब आर्थिक आजादी मिली तो भारतीयों ने साबित कर दिया कि वो किसी से कम नहीं हैं। थोड़े ही दिनों बाद देश में हर क्षेत्र में बदलाव देखा जाने लगा। खासतौर से सेवा क्षेत्र में, जहां सरकारी कंपनियों का वर्चस्व खत्म हुआ और लोगों को बेहतरीन सेवाएं मिलनी शुरू हुई। चाहे वह टेलीफोनसेवा हो, बैंकिंग सेवा या फिर हवाई सेवा।

आर्थिक आजादी के दौर में भारतीय उद्यमियों ने साबित किया कि वह किसी से कम नहीं हैं और उनमें तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियों से मुकाबला करने का माद्दा मौजूद है। खासतौर से इनफारमेशन टेक्नालाजी और पीपीओ सेक्टर में तो भारत की कंपनियों ने सारी दुनिया में अफना लोहा मनवाया।

आर्थिक आजादी के दौर में भारतीय उद्यमियों ने साबित किया कि वह किसी से कम नहीं हैं और उनमें तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियों से मुकाबला करने का माद्दा मौजूद है। खासतौर से इनफारमेशन टेक्नालाजी और पीपीओ सेक्टर में तो भारत की कंपनियों ने सारी दुनिया में अफना लोहा मनवाया।

बीपीओ सेक्टर के बारे में कहा जाता है कि ये भारत के लिए वैसा ही है जैसा एक वक्त में जापान के लिए ऑटो मोबाइल सेक्टर और सऊदी अरब के लिए तेल था। आज सिर्फ पीपीओ और आईटी सेक्टर में तेरह लाख लोगों को नौकरियां मिली हैं। नासकाम और मेकिन्सी के एक सर्वे के मुताबिक 2010 तक देश में इस सेक्टर में करीब 23 लाख नौकरियां निकलेंगी। लेकिन चालीस करोड़ की कामकाजी आबादी वाले देश के लिए ये समुद्र में एक बूंद की तरह है।

भारत के आईटी पावर हाउस इंफोसिस के चेयरमैन और आर्थिक सुधार के चमकते सितारे एन नारायण मूर्ति भी कहते हैं कि देश में अभी सचमुच के विकास की शुरुआत नहीं हुई है क्योंकि आर्थिक सुधार का फायदा देश के गरीबों को नहीं मिल पाया है। इसका दोष वह उन नीतियों को देते हैं जो गरीबों को अच्छी क्वालिटी की प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा देने में असमर्थ रही है। नारायणमूर्ति का देश के नेताओं से सवाल है कि 1991 में उद्योग क्षेत्र से तो लाइसेंस और कोटा राज को खत्म कर दिया गया, लेकिन 15 साल बाद भी प्राइमरी और सेकेंड्री एजुकेशन में लाइसेंस राज क्यों कायम है। आज कोई स्कूल खोलना चाहता है तो उसे राज्य सरकार से अनुमति की जरूरत

यही कारण है कि हमारे समाज में तर्कणा, मानववाद, इहलोगवाद और वैज्ञानिकता के तकाजे की जमीन बहुत कमजोर है। आम जनता में पुनर्जागरण-प्रबोधन के काम को नए सिरे से हाथ में लेने की जरूरत आज कुछ हलकों में शिद्दत से महसूस की जा रही है। पश्यदृष्टि से देखें तो क्या रूसो, वाल्टेयर और अन्य दार्शनिकों-विचारकों द्वारा समाज को आलोड़ित किए जाने के बगैर फ्रांसीसी क्रांति संभव थी। विचारों को भौतिकता में रूपांतरित करने के लिए सर्वप्रथम नई-नई परियोजनाओं को हाथ में लेना पड़ता है और आज सर्वोपरि जरूरत इसी बात की है। नए सिरे से वैचारिक आलोड़न के लिए प्रयास करना होगा और यह काम आम जनता की रोजमर्रा की जिंदगी के निकट जाकर करना होगा क्योंकि बुध्दि-विलासियों की जमात तैयार करने से कुछ होने जाने वाला नहीं है।

जिस दौर में भारत आजाद हुआ उस समय विज्ञान और टेक्नालाजी जितनी अधिक उन्नत हो चुकी थी और वैश्विक पूंजीवाद के परअक्स भारतीय पूंजीवाद जितना कमजोर था उसको देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि इस व्यवस्था के भीतर विकास की संभावनाएं अब क्षीण से क्षीणतर होती जाएंगी। जरूरत इस बात की है कि हालात को समझा जाए और उसे बदलने के प्रयास किए जाएं। सिर्फ यही नहीं होना चाहिए कि समाज के सभी नागरिकों की बुनियादी जरूरतें पूरी हों बल्कि उनके मानसिक-आत्मिक जगत को और उच्चतर धरातल पर ले जाने, उन्हें बेहतर से बेहतर मनुष्य बनाने के लिए भी परिस्थितियां तैयार की जानी चाहिए। अन्याय-गैर बराबरी और धन-संपत्ति के आधार पर मिलने वाले विशेषाधिारों का तो खात्मा होना ही चाहिए।

♦ कामता तिवारी

होती है जबकि यूनिवर्सिटी खोलने के लिए केंद्र सरकार के यहां चक्कर लगाने पड़ते हैं।

देश आज दो राहे पर खड़ा है। अगर राष्ट्रपति के सपने को पूरा करना है तो हमें देश में आर्थिक सुधार की गति और गति तेज करनी होगी, खास तौर से शिक्षा क क्षेत्र में। द इकनामिस्ट में छपे लेखों को पढ़कर लगता है कि देश उड़ने के लिए तैयार है, लेकिन उसे ईंधन के तौर पर आर्थिक सुधार की तेज गति चाहिए। भारत जैसे प्राचीन सभ्यता वाले देश के लिए 59 साल का वक्त बहुत कम है। लेकिन 15 साल क दौरान देश ने जैसी प्रगति की है, उसमें थोड़ा और इजाफा कर दिया जाए तो हम 2020 तक अमीर देशों की सूची मे शामिल होने का असंभव काम संभव कर सकते हैं। इस प्रक्रिया मे यह अवश्य ध्यान में रखना होगा कि सुधार व विकास सिर्फ ऊपरी तौर पर न होकर वहां तक हों जहां तक देश की अधिसंख्य गरीब जनता रहती है। विकास और सुधार का लाभ बराबर अनुपात में उसे भी मिलना चाहिए न कि सिर्फ गिनती के कुछ लोगों को।

♦ देवेंद्र

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने क्या कहा था

स्वाधीन बारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू स्वतंत्रता को एक उत्कृष्ट प्रासाद के रूप में विकसित करना चाहते थे। यहां पेश है 14 अगस्त 1947 की आधी रात को संविधान सभा में दिए गए उनके भाषण के अंश--

कई साल गुजर गए जब हमने भविष्य की अपनी तकदीर का खाका तय किया था और अब वह समय आ गया है जब हम अपनी प्रतिज्ञा को अमली जामा पहनाएं, न सिर्फ पूरे का पूरा अथवा भरपूर व बेहद पर्याप्त मात्रा में।

आधी रात के वक्त जब पूरी दुनिया नींद के आगोश में होगी, एक ही झटके में भारत की तकदीर जाग उठी और हमने स्वतंत्रता हासिल कर ली। वह क्षण आया, जो इतिहास में बिरले ही आता है, जब एक युग का अवसान हुआ और हमने एक नए युग की तरफ कदम बढ़ाए और जब सदियों से दबी कुचली देश की आत्मा को वाणी प्राप्त हुई। यह बिलकुल मौके के मुताबिक है कि हम भारत और भारतवासियों तथा मानवता के व्यापक ध्येय के प्रति समर्पित होने की प्रतिज्ञा लें।

स्वतंत्रता और सत्ता एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी साथ लाई है। वह जिम्मेदारी भारत के संप्रभु अवाम की नुमाइंदगी करने वाली इस संप्रभु निकाय अर्थात संविधान सभा पर है। आजादी हासिल होने से पहले की सारी प्रसव वेदना हमने झेली है और हमारे दिल दर्द से भरे हुए हैं। उनमें से कुछ दर्द तो अभी भी बने हुए हैं।

इतिहास की जब से पौ फटी तभी से भारत ने अपनी अंतहीन खोज का सिलसिला शुरू किया और कई सदियां उसके प्रयासों और गौरवशाली उपलब्धियों और उसी तरह उसकी नाकामियों की गवाह बनीं। अच्छे और बुरे दौर में उसने अपनी खोज की सिलसिला कभी थमने नहीं दिया अथवा उन लक्ष्यों को उसने कभी नहीं भुलाया जो उसे शक्ति प्रदान करते रहे। आज हमने अपने दुर्भाग्य का अध्याय समाप्त कर दिया है और भारत को फिर एक बार अपनी ही करनी है।

आज जिस उपलब्धि का हम जश्न मना रहे हैं वह बस एक कदम भर है। अब एक ऐसे अवसर का द्वार खुला है जिस पर चलकर न सिर्फ और बड़ी-बड़ी जीतें बल्कि उन उपलब्धियों को हासिल करना है जो हमारा इंतजार कर रही हैं। क्या इस अवसर को भुनाने और भविष्य की चुनौती का मुकाबला करने के लिए हमारे अंदर पर्याप्त दमखम है ?

स्वतंत्रता और सत्ता एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी साथ लाई है। वह जिम्मेदारी भारत के संप्रभु अवाम की नुमाइंदगी करने वाली इस संप्रभु निकाय अर्थात संविधान सभा पर है। आजादी हासिल होने से पहले की सारी प्रसव वेदना हमने झेली है और हमारे दिल दर्द से भरे हुए हैं। उनमें से कुछ दर्द तो अभी भी बने हुए हैं। भविष्य की राह आसान नहीं है और न ही सुस्ताने का समय बल्कि लगातार कोशिश करते रहना है ताकि उन प्रतिज्ञाओं को जो हमने समय-समय पर ली हैं और जो आझ हम लनेने जा रहे हैं उन्हें पूरा किया जा सके। भारत माता की सेवा का अर्थ है उन करोड़ों लोगों की सेवा करना जिन्होंने मुसीबतें झेली हैं। इसक अर्थ हुआ गरीबी और उपेक्षा का, बीमारी और अवसरों की असमानता का खात्मा करना। हमारी पीढ़ी के सबसे महानतम व्यक्ति की आकांक्षा है हर आंख क आंसू पोंछ लेना। हो सकता है अभी यह हमारी क्षमता से बाहर हो पर जब तक लोगों की आंख

में आंसू हैं और मुसीबतों का अंबार है, तब तक हमारा काम कभी पूरा नहीं होगा।

इसलिए हमें अपने ख्वाबों को हकीकत में बदलने के लिए मशक्कत के साथ काम करते रहना है। ये ख्वाब भारत के लए हैं पर दुनिया के लिए भी हैं, सभी देशों और उनके अवाम के लिए भी हैं। सभी राष्ट्रों और उनके अवाम को एक डोर में बंध जाना है क्योंकि आज कोई राष्ट्र अलग-थलग पड़े रहने की कल्पना तक नहीं कर सकता। शांति को अविभाज्य बनाना है, उसी तरह स्वतंत्रता और समृद्धि को भी। इसी तरह अगर दुनिया के किसी हिस्से में तबाही होती है तो उसका मुकाबला मिलकर करना है।

भारत की जनता से जिसके नुमाइंदे हम हैं, अपील करते हैं कि वे इस महान यज्ञ में पूरे भरोसे और विश्वास के साथ हमारे साथ आएं। यह वो तुच्छ और नकारात्मक आलोचनाओं का या एक दूसरे को बुरा भला कहकर दोषारोपण करने का नहीं है। हमें स्वाधीन भारत का उत्कृष्ट प्रासाद निर्मित करना है जिसमें सभी भारतवासी ससम्मान रह सकें।

पूर्ण स्वराज की घोषणा का प्रस्ताव

जनता की इस नई भावना को जल्द ही राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपना लिया। गांधी जी सक्रिय राजनीति में वापस लौट आए और दिसंबर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता सम्मेलन में शामिल हुए। कांग्रेस का पहला काम जुझारू वामपंथ से मेल-मिलाप करना था। वर्ष 1929 के ऐतिहासिक लाहौर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। इस घटना का एक रोमानी पहलू भी था। मोतीलाल नेहरू 1928 में कांग्रेस के अध्यक्ष थे और राष्ट्रीय आंदोलन के आधिकारिक प्रमुख के रूप में उनका स्थान अब उनके पुत्र ने ले लिया था। इस तरह आधुनिक इतिहास में एक विशिष्ट परिवार की विजय हुई।

कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में इस नई, जुझारू भावना को आवाज मिली। इस अधिवेशन में पारित एक प्रस्ताव ने पूर्ण स्वराज्य को कांग्रेस का उद्देश्य घोषित किया। 31 दिसंबर 1929 को स्वाधीनता का नया-नया स्वीकृत तिरंगा झंडा लहराया गया। 26 जनवरी 1930 को पहला स्वाधीनता दिवस घोषित किया गया। उसके बाद यह दिवस हर साल मनाया जाने लगा, जब लोग यह शपथ लेते थे कि ब्रिटिश शासन की अधीनता अब और आगे स्वीकार करना मानवता और ईश्वर के प्रति अपराध होगा। इस अधिवेशन ने एक नागरिक अवज्ञा आंदोलन भी छेड़ने की घोषणा की। लेकिन इसने संघर्ष का कोई कार्यक्रम नहीं तैयार किया। यह काम महात्मा गांधी पर छोड़ दिया गया और पूरे कांग्रेस संगठन को उनकी आज्ञा के अधीन कर दिया गया। गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन एक बार फिर सरकार के मुकाबले खड़ा हुआ। देश अब एक बार फिर आशा, उल्लास और मुक्त होने की दृढ़ भावना से भर उठा।

ताकि आने वाली पीढ़ियां महान विरासत को भूल न जाएं

अठारह सौ सत्तावन, एक सशस्त्र क्रांति, जिसने युगों से सोई कौम को जगा दिया। हजारों ज्ञात और लाखों अज्ञात शहीदों की शहादत, हिंदुस्तान के संघर्षों के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में दर्ज है, हिंदुस्तान के पैमाने पर, सशस्त्र संघर्षों में 1857 से पहले और आज तक राष्ट्रीय स्तर पर इतना बड़ा संघर्ष कभी जनता ने नहीं छेड़ा। उस गौरवशाली संघर्ष को मई 2007 में 150 वर्ष पूरे हो जाएंगे।

1857 दुनिया की विफल क्रांतियों में से एक जरूर बनकर रह गई लेकिन हिंदुस्तान की तकदीर लिखने वाले सरमायेदारों को वह हमेशा परेशान करती रही। यही कारण है कि ब्रिटिश राज ने 1857 को सिपाही विद्रोह या असंतुष्ट जमीदारों का विद्रोह साबति करने की वह हर संभव कोशिश की जो वे कर सकते थे। इसके लिए बाकायदा जरखरीद लेखकों व इतिहासकारों की पूरी फौज खड़ी की गई, जिनकी कलमें अभी भी आम हिंदुस्तानियों के लहू को काला कर रही हैं। यही कारण है कि 1857 की 150वीं वर्षगांठ को लेकर कहीं कोई हलचल नहीं है। डेढ़ सौ वर्ष का समय पीढ़ियों को अपनी जमीन व इतिहास से काट देने के लिए पर्याप्त होता है। इसीलिए केंद्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस के नेतृत्व वाली धर्मनिरपेक्ष संप्रग सरकार ने 1857 की वर्षगांठ मनाने तथा समारोहों पर होने वाले खर्च के लिए मात्र 10 करोड़ रुपये आवंटित कर औपचारिकता पूरी कर दी।

कांग्रेस को वैसे भी 1857 की गौरवशाली दास्तान को आम आदमी तक पहुंचाने की जरूरत नहीं है क्योंकि हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई में उसका इतिहास सिर्फ गांधी, नेहरू-इंदिरा तक है। गांधी की जो मूर्ति वह संत व राष्ट्रपिता के रूप में स्थापित कर चुकी है।

कांग्रेस को वैसे भी 1857 की गौरवशाली दास्तान को आम आदमी तक पहुंचाने की जरूरत नहीं है क्योंकि हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई में उसका इतिहास सिर्फ गांधी, नेहरू-इंदिरा तक है। गांधी की जो मूर्ति वह संत व राष्ट्रपिता के रूप में स्थापित कर चुकी है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि कांग्रेस का इतिहास एक बार फिर याद किया जाए। 1857 की तमाम विफलताओं के बावजूद कंपनी राज समाप्त हो गया और देश में महारानी का शासन स्थापित हो गया। ब्रिटिश शासक हिंदुस्तान में रह-रहकर उठ रहे विद्रोहों की ज्वाला से भयाक्रांत थे क्योंकि 1857 से पहले भी और उसके बाद भी

स्थानीय स्तर पर छिटपुट सशस्त्र संघर्ष उठते रहे। ऐसे में शासकों को लगा कि ब्रिटिश राज और आम जनता में संवाद कायम करने व छोट-मोटी सहूलियतें देने के लिए एक मंच बनाया जाए। इसी विचार ने कांग्रेस को जन्म दिया। लेकिन उसका पहला अध्यक्ष बनाया गया उस एओ ह्यूम को जिसने 1857 की क्रांति को कुचलने के लिए पूरे अवध (उत्तर प्रदेश) में बच्चों तक को तोप पर चढ़वाया और महिलाओं को सरेआम अपमानित किया।

दक्षिण अफ्रीका से मोहनदास करमचंद गांधी की हिंदुस्तान वापसी तक कांग्रेस देश के अंग्रेज व अंग्रेजी परस्त रियासतदारों, जमीदारों अथवा नवधनाढ्य सेठों की पार्टी बनी रही। जिसका काम ब्रिटिश शासन से बातचीत कर उसके जुल्म ओ सितम को कुछ कम करना था। गांधी ने 20वीं शताब्दी के पहले दशक में कांग्रेस की बागडोर संभाली। गांधी जी ने भी देश की व्यवस्था विरोधी लड़ाकू भावना को बुद्ध के शांति व अहिंसा से जोड़ दिया। अंग्रेजों की मुकाबिल तोप के आगे सत्य व अहिंसा रूपी गांधी का हथियार दुनिया को चमत्कृत कर गया। हालांकि बुनियादी तौर पर गांधी की कांग्रेस अंग्रेजों से कुछ और सुधार व कुछ स्वशासन मांगने के लिए ही लड़ती रही। अंग्रेजों का वश चलता तो वह 1857 की महान क्रांति को गुमनामी के अंधेरे में दबा देती। क्योंकि उसके लिए सबसे बड़ा संकट यह था कि देश के लोगों यह विश्वास न हो जाए कि वह जात-पात, धर्म और अमीर-गरीब का भेदभाव भूलकर एकजुट हो व्यवस्था परिवर्तन कर सकते हैं। कांग्रेस चूंकि ब्रिटिश राज के सांचे में पली-बढ़ी पार्टी थी इसलिए 1857 उसके ळिए कभी आदर्श नहीं रहा।

दक्षिण अफ्रीका से मोहनदास करमचंद गांधी की हिंदुस्तान वापसी तक कांग्रेस देश के अंग्रेज व अंग्रेजी परस्त रियासतदारों, जमीदारों अथवा नवधनाढ्य सेठों की पार्टी बनी रही। जिसका काम ब्रिटिश शासन से बातचीत कर उसके जुल्म ओ सितम को कुछ कम करना था। गांधी ने 20वीं शताब्दी के पहले दशक में कांग्रेस की बागडोर संभाली।

1857 की क्रांति को कुछ सिपाहियों अथवा अंग्रेजों से परास्त राजाओं, जागीरदारों का विद्रोह साबित करना एक बड़ी साजिश है। उस साजिश का पर्दाफाश किया जाना जरूरी है। अंग्रेजों के फिलाफ देश में उनके पैर रखते ही विरोध की आग भड़कने लगी थी। इतिहास में दर्ज तारीखें बताती हैं कि ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोहों की पूरी एक लंबी श्रृंखला है। अंग्रेजों के खिलाफ सबसे पहला ज्ञात विद्रोह 1763 और 1800 के बीच चला संन्यासी विद्रोह है। इसके बाद हम पाते हैं कि 1857 तक आते-आते पूरे हिंदुस्तान में छोटे-बड़े लगभग 80 विद्रोह हो चुके थे। सशस्त्र स्वतंत्रता संग्राम केवल 1857 से नहीं शुरू हुआ था बल्कि उसकी बुनियाद 1763 से ही पड़ने लगी थी।

जिस लूट खसोट, छल-बल से हिंदुस्तान की जनता को लूटा गया था, उसके चलते विद्रोहों की एक कड़ी शुरू होती है। ऐसा पहला विद्रोह हिंदुस्तान के गौरवशाली स्वतंत्रता संग्राम में संन्यासी विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है। बंगाल और बिहार की भूमि पर शुरू हुआ यह आंदोलन लगभग 40 वर्ष तक चलता रहा। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स ने इस विद्रोह का नाम संन्यासी विद्रोह रखा था। सरकारी दस्तावेज बताते हैं कि यह ब्रिटिश पूंजीवाद और हिंदुस्तानी जमीदारों के खिलाफ किसानों का मिलाजुला विद्रोह था। हालांकि अंग्रेज इस विद्रोह को घुमंतू उपद्रवियों व डकैतों के विद्रोह का नाम देते रहे हैं। गजेटियर के लिखने वाले सर विलियन हंटर ने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि संन्यासी विद्रोह किसानों का विद्रोह था और इसमें बेरोजगार हुई सेना के सिपाही खेतों-गांवों से उजड़े किसान तथा उद्योगों से बेकार हुए कर्मकार शामिल थे। संन्यासी विद्रोही 50-50 हजार तक का दल बांधकर देश भर में घूमा करते थे और संन्यासियों की तरह जीवनयापन करते थे।

संन्यासी विद्रोहियों ने बंगाल और बिहार के कई जिलों में छोटे-छोटे दुर्ग बना लिए थे। इनका पहला बड़ा आक्रमण ईस्ट इंडिया कंपनी की ढाका स्थित कोठी पर हुआ था। पटना, पूर्णिया, रंगपुर, दिनाजपुर, बंगाल में तराई के जंगल, बगुला व जलपाईगुड़ी जिलों में इन विद्रोहियों के मजबूत ठिकाने थे। महास्थान गढ़ इनका मुख्यालय था। लगभग 40 वर्ष तक के अपने संघर्ष में संन्यासी विद्रोहियों ने अंग्रेजों को छोट-बड़े कई युद्धों में बड़ी शिकस्त दी। गजेटियर में 1787 तक इन विद्रोहियों के आक्रमण और संघर्ष की जानकारी मिलती है। संन्यासी विद्रोह केवल एक विद्रोह नहीं था, बल्कि उस समय से लेकर 1857 के प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व 70-80 विद्रोहों का सामना ईस्ट इंडिया कंपनी को करना पड़ा था। इन विद्रोहों ने मेदिनीपुर, शमशेर गाजी, संदीप मोआमारिया, सुबांदिया, पहाड़िया, पासी राजा सिलहट, चौआड़, ढुंढिया, गंजाम, चेरो आदि दर्जनों विद्रोह हैं। अधिकांश विद्रोह छोटे-बड़े जागीरदारों, राजाओं व नवाबों के थे तो वहीं बुनकर, रेशम के गारीगर, अफीम के किसान, नमक के कारीगर, कपड़े-कपास के कारीगर, किसान आदि लोगों के विद्रोह 18वीं शताब्दी के अंत तक दिखाई पड़ते हैं। 1806 में दक्षिण का सिपाही विद्रोह, त्रावणकोर का संग्राम, बुंदेलखंड, बघेलखंड और बनारस की हड़ताल, कच्छ में अशांति, बरेली का विद्रोह, भील विद्रोह, आदिवासियों का मोचा, मेर गुजर, देशी पलटन, पागलपंथी, खसिया, सिंगफी, वहाबी, कोल, गोंड, फराजी आदि दर्जनों विद्रोहों से ईस्ट इंडिया कंपनी को जूझना पड़ा।

लगभग 40 वर्ष तक के अपने संघर्ष में संन्यासी विद्रोहियों ने अंग्रेजों को छोट-बड़े कई युद्धों में बड़ी शिकस्त दी। गजेटियर में 1787 तक इन विद्रोहियों के आक्रमण और संघर्ष की जानकारी मिलती है। संन्यासी विद्रोह केवल एक विद्रोह नहीं था, बल्कि उस समय से लेकर 1857 के प्रथम राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम से पूर्व 70-80 विद्रोहों का सामना ईस्ट इंडिया कंपनी को करना पड़ा था।

इस तरह यह विद्रोह यह साबित करते हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन जो-जो राज्य व क्षेत्र आते गए वहां-वहां विद्रोहों की कड़ी जुड़ती गई। कहीं-कहीं राजाओं और नवाबों ने अंग्रेजों से समझौता भले कर लिया हो लेकिन स्थानीय जनता, किसान, आदिवासी और कर्मकारों ने अंग्रेजों से जबरदस्त लोहा लिया। बंगाल, बिहार, कच्छ और मध्य प्रदेश में विद्रोहों का सिलसिला लगातार चलता रहा। मध्य प्रदेश का बुंदेला विद्रोह, कोल्हापुर का

गडकरी विद्रोह, 1844-1859 का सामंतवाड़ी विद्रोह महाराष्ट्र में, आंध्र प्रदेश के कुरनूल में 1846 का विद्रोह, उड़ीसा में 1846 का खोंड विद्रोह, 1848 में असम में गारों का विद्रोह, अबोरों का मोर्चा, असम-मणिपुर की सीमा पर 1849 को शुरू हुआ नागाओं का मोचा जैसे विद्रोह दिखाई देते हैं। ऐसे में 1857 को सिपाही विद्रोह कहना लाखों-लाख शहीदों का अपमान है। जो अंग्रेज करते रहे हैं लेकिन आजादी के बाद भी क्या इतिहास को पलट दखने की जहमत कांग्रेस ने उठाई?

सवाल उठता है कि इन लाखों शहीदों के परिजन आज कहां हैं। कांग्रेस से जुड़े आंदोलनकारियों को आज भी पेंशन मिलती है लेकिन हिंदुस्तान के अंतिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर, शेरे मैसूर टीपू सुल्तान, लखनऊ के वाजिद अलीशाह के वंशज कोलकाता में रिक्शा खींच रहे हैं या खोमचा लगाते हैं। दरअसल कांग्रेस मानती ही नहीं कि हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई उसके अलावा किसी और ने लड़ी। अंग्रेजों से लड़ने वाले आम आदमी को छोड़े, राजे-महाराजे भी बदहाल व कंगाल कर दिए गए, लेकिन इतिहास गवाह है कि 1857 में अंग्रेजों की मदद व क्रांतिकारियों को कुचलने के लिए ग्वालियर, पंजाब आदि रियासतों ने अपनी सेनाएं दी। बाद में वह पुरस्कृत हुए और कांग्रेस से जुड़ कर राष्ट्र भक्त भी बने। जिनकी पीढ़ियां आज भी विधायक, सांसद, मंत्री व मुख्यमंत्री बन रही हैं। 1857 की भावना को कुचलने के लिए यह काफी है? 1857 की 150वीं वर्षगांठ मनाने की औपचारिकता कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार कर रही है। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने सभी दलों के नेताओं की बैठक पिछले महीने बुलाई थी। तैयारियों के संदर्भ में हुई इस बैठक में 1857 के शहीदों के वंशजों की तलाश करने व उन्हें सम्मानित करने का प्रस्ताव जनता दल यू अध्यक्ष शरद यादव, सपा के मोहन सिंह आदि नेताओं ने रखा। प्रधानमंत्री ने उन्हें कुछ करने का आश्वासन भी दिया। लेकिन वर्ष भर होने वाले समारोहों के लिए सिर्फ 10 करोड़ रुपये आवंटित किए गए। वैसे भाजपा को भी 1857 से खास वास्ता नहीं है क्योंकि वह उसके वैचारिक दायरे में नहीं आता। 1857 को कार्ल मार्क्स ने भारतीय सर्वहारा का प्रथम विद्रोह अपने में लेखन में स्थापित किया है। इसलिए सुधारवादी सीपीएम और सीपीआई जैसी पार्टियां 1857 से अपने को जोड़ती हैं। लेकिन सरकारी वामपंथी हो जाने के बाद वह भी खामोश हैं। ऐसे में आम जनता को अपने शहीदों को स्वयं याद करना होगा ताकि आने वाली पीढ़ियां अपनी महान विरासत को भूल न जाएं।

दरअसल कांग्रेस मानती ही नहीं कि हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई उसके अलावा किसी और ने लड़ी। अंग्रेजों से लड़ने वाले आम आदमी को छोड़े, राजे-महाराजे भी बदहाल व कंगाल कर दिए गए, लेकिन इतिहास गवाह है कि 1857 में अंग्रेजों की मदद व क्रांतिकारियों को कुचलने के लिए ग्वालियर, पंजाब आदि रियासतों ने अपनी सेनाएं दी। बाद में वह पुरस्कृत हुए और कांग्रेस से जुड़ कर राष्ट्र भक्त भी बने। जिनकी पीढ़ियां आज भी विधायक, सांसद, मंत्री व मुख्यमंत्री बन रही हैं। 1857 की भावना को कुचलने के लिए यह काफी है? 1857 की 150वीं वर्षगांठ मनाने की औपचारिकता कांग्रेस नेतृत्व वाली सरकार कर रही है।

♦ अनिल दुबे

मीडिया की भूमिका

भारतीय स्वतंत्रता के समय लोगों में जुनून की जो सीमा थी उसमें उस समय की पत्रकारिता का भी बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसका पता इस बात से ही होता है कि उस वक्त लोगों को अपनी खुलकर कहने का हक नहीं था। उस वक्त के पत्रों और उस समय की पत्रकारिता पर दूरदर्शन से जुड़े टीवी के वरिष्ठ पत्रकार सुधांशु रंजन के विचार-----

अंग्रेजी शासन से भारत को मुक्त कराने के लिए स्वतंत्रता आंदोलन लगभग पूरे भारत में चल रहा था। सभी लोग अपने-अपने तरीके से स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे थे। लेकिन लोगों को अपनी बात सभी के समक्ष रखने का हक नहीं था। उस समय के स्वतंत्रता सेनानी और साहित्यकार सभी अपनी बातों को देशवासियों के समक्ष रखने का सबसे बड़ा माध्यम समाचार पत्र को ही मानते थे। आंदोलन के लिए बड़े नेता किसी न किसी पत्रिका या समाचार पत्र की मदद लेते थे। इस तरह पत्रिकाएं व समाचार पत्र स्वतंत्रता आंदोलन की सफलता में काफी मददगार साबित हो रहे थे और इनकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी। महात्मा गांधी ने अपनी बातों को जनसामान्य तक पहुंचाने के लिए यंग इंडिया और हरिजन पत्र निकालते थे। तिलक ने केसरी नामक पत्र निकाला। इसी प्रकार जो क्रांतिकारी भी अपनी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए समाचार पत्रों व पत्रिकाओं को ही हथियार बनाते थे क्योंकि वे अंडरग्राउंड होकर काम किया करते थे। अंग्रेजों ने भी धीरे-धीरे पत्रिकाओं व समाचार पत्रों पर अंकुश के लिए अनेक तरीके अपनाए। रोलेट ऐक्ट भी उनमें से एक था। लेकिन भारतीय लोगों और क्रांतिकारियों आदि सभी ने इस ऐक्ट के खिलाफ पूरे देश में जबरदस्त विरोध किया। इससे एक बात तो साफ

महात्मागांधी ने अपनी बातों को जनसामान्य तक पहुंचाने के लिए यंग इंडिया और हरिजन पत्र निकालते थे। तिलक ने केसरी नामक पत्र निकाला। इसी प्रकार जो क्रांतिकारी भी अपनी विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए समाचार पत्रों व पत्रिकाओं को ही हथियार बनाते थे क्योंकि वे अंडरग्राउंड होकर काम किया करते थे। अंग्रेजों ने भी धीरे-धीरे पत्रिकाओं व समाचार पत्रों पर अंकुश के लिए अनेक तरीके अपनाए।

हो गई कि स्वतंत्रता आंदोलन में समाचार पत्रों व पत्रिकाओं की काफी महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसीलिए मीडिया के माध्यम से लड़ाई गई लड़ाई का स्वतंत्रता आंदोलन में विशेष स्थान माना जाता है।

स्वतंत्रता हासिल होने के बाद जब कांग्रेस की अगुवाई में देश की पहली सरकार बनी तब भी समाचार पत्रों ने देश की आर्थिक स्थिति को सरकार के समक्ष लाने के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया। कांग्रेस की सरकार लोकतांत्रिक थी लेकिन आजादी के बाद अखबारों की भूमिका धनात्मक रही फिर भी समाचार पत्रों में असली क्रांति इमरजेंसी के बाद आई। सन् 1988 में राजीव गांधी ने मीडिया आदि क्षेत्रों कई महत्वपूर्ण सहयोग दिया। इससे भारत में मीडिया का नया रूप उभर कर सामने आया। आज हमारे देश में कई सारे न्यूज चैनल हैं जो देश दुनिया की सभी बड़ी छोटी खबरों को जनता तक पहुंचाने में लगे हैं। इससे लोगों को पूरी दुनिया के विषय में जानने और समझने का मौका मिल रहा है। लेकिन कुछ गैरजिम्मेदार लोगों के कारण ही आज पत्रकारिता पर भी लोग उंगली उठा रहे हैं। कुछ चैनलों द्वारा किए जा रहे स्टिंग आपरेशन और किसी व्यक्ति की निजी जिंदगी में हो रही ताकझांक को उचित नहीं माना जा सकता। दरअसल खबर वही जनता के सामने आनी चाहिए जो सभी के हित में हो। लेकिन इसका मतलब यह नहीं निकाला जाना चाहिए कि स्टिंग आपरेशन होने ही नहीं चाहिए। स्टिंग आपरेशन ऐसे होने चाहिए जिसमें सत्यता हो और जिसके बाद समाज व देश का कुछ भला हो सके। सिर्फ अपने हित के लिए किसी फिल्मकार अथवा किसी सेलेब्रिटी की निजी जिंदगी को कैमने में कैद कर उसे पूरी दुनिया के समक्ष दिखाने को उचित नहीं कहा जा सकता। अमेरिका के प्रसिद्ध पत्रकार मेडिसन ने ठीक ही कहा है कि किसी पौधे को पेड़ बनने के लिए उनकी शाखाओं को नहीं बल्कि उनकी जड़ों का ध्यान रखना चाहिए।

आजादी के बाद अखबारों की भूमिका धनात्मक रही फिर भी समाचार पत्रों में असली क्रांति इमरजेंसी के बाद आई। सन् 1988 में राजीव गांधी ने मीडिया आदि क्षेत्रों कई महत्वपूर्ण सहयोग दिया।

धीरे-धीरे समाचार चैनलों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। इस कारण उनमें एक खास तरह की प्रतिस्पर्धा भी हो रही है। इसमें कोई बुराई नहीं लेकिन प्रतिस्पर्धा के चक्कर में वे नैतिकता और आदर्श जैसे तत्वों को भूलते जा रहे हैं। यही कारण है कि चैनलों पर तमाम ऐसी चीजें भी दिखाई जाने लगी हैं जिससे समाज, देश व लोगों का कोई भला नहीं होने वाला है। इसके विपरीत वे लोगों में कुछ गलत धारणाएं अवश्य पैदा कर रही हैं। समाचार पत्र-पत्रिकाओं व चैनलों को हमेशा देश व समाज के निर्माण में अपना योगदान देना चाहिए। मीडिया जगत को अपनी जिम्मेदारियों को भूलना नहीं चाहिए और हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि उनकी जिम्मेदारी राजनीतिज्ञों से कही ज्यादा है। इसी वजह से लोग मीडिया व मीडियाकर्मियों का सम्मान करते हैं और उनकी ओर आशाभरी निगाहों से देखते हैं। आजादी के संदर्भ में भी यह ध्यान रखना होगा कि जिस मीडिया ने देश को स्वतंत्रता दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया वह वर्तमान में भी देश और समाज के विकास में उसी तरह की भूमिका निभा सकता है।

प्रस्तुति : रुचिर कुमार

जलियांवाला बाग का हत्याकांड

सरकार आजादी के आंदोलन को कुचल देने पर आमादा थी। बंबई, अहमदाबाद, कलकत्ता, दिल्ली तथा दूसरे नगरों में निहत्थे प्रदर्शनकारियों पर बार-बार लाठियों औ गोलियों का प्रहार हुआ। गांधी जी ने 6 अप्रैल 1919 को एक शक्तिशाली हड़ताल का आह्वान किया। जनता ने अभूतपूर्व उत्साह से इसका अनुसरण किया। सरकार ने इस जन प्रतिरोध का सामना, खासकर पंजाब में, दमन से करने का निश्चय किया। इस समय सरकार ने आधुनिक इतिहास का एक सबसे भयंकर राजनीतिक अपराध भी किया। पंजाब में अमृतसर में 13 अप्रैल 1919 को एक निहत्थी मगर भारी भीड़ अपने लोकप्रिय नेताओं डाक्टर सैफुद्दीन किचलू और डाक्टर सत्यपाल की गिरफ्तारी का विरोध करने के लिए जलियांवाला बाग में जमा हुई। अमृतसर के फौजी कमांडर जनरल डायर ने शहर की जनता को आतंक द्वारा वश में करने का निश्चय किया। जलियांवाला बाग बहुत बड़ा बाग था, मगर इसमें से निकलने का केवल एक रास्ता था। शेष तीन ओर से यह मकानों से घिरा था। डायर ने बाग को फौज द्वारा घेर लिया और निकास द्वार पर एक फौजी दस्ता कर दिया। उसके बाद उसने अपने फौजियों को राइफलों और मशीनगनों द्वारा अंदर घिरी भीड़ पर गोली बरसाने का हुक्म दे दिया। वे तब तक गोली बरसाते रहे जब तक कि गोलियां खत्म न हो गईं। हजारों लोग मरे और घायल हुए। एक उदारवादी वकील शिवस्वामी अय्यर ने, जिन्हें सरकार ने नाइट की उपाधि दी थी, पंजाब के अत्याचारों के बारे में लिखा है-

जलियांवाला बाग में लोगों बिखरने का अवसर दिए बिना सैकड़ों निहत्थे लोगों का कत्लेआम, गोलीबारी में घायल सैकड़ों लोगों की दशा के प्रति जनरल डायर की बेरुखी, जो लोग बिखरकर भागने लगे थे उन पर मशीनगनों सो गोलीबारी, लोगों पर सार्वजनिक रूप से कोड़े बरसाना, हजारों छात्रों को उपस्थिति जताने के लिए 16 मील दूर प्रतिदिन जाने का आदेश, 500 छात्रों और प्रोफेसरों की गिरफ्तारी और नजरबंदी, 5 से 7 वर्ष के स्कूली बच्चों को भी झंडे की सलामी के लिए परेड में उपस्थित रहने के लिए बाध्य करना,....एक विवाह मंडली पर कोड़ों की बारिश, डाक पर सेंसर, छह सप्ताहों तक बादशाही मसजिद पर ताला, किसी ठोस कारण के बिना लोगों की गिरफ्तारी औ नजरबंदी,......इसलामिया स्कूल छह सबसे बड़े बच्चों पर कोड़ों की मार, केवल इसलिए कि वे स्कूली बच्चे थे और बड़े बच्चे थे, गिरफ्तार लोगों को खुलेआम बंद रखने के लिए बड़े पिंजड़े का निर्माण, दंड के नए-नए रूपों का आविष्कार जैसे सड़क पर रेंगकर चलने के आदेश, कूदते हुए चलने के आदेश आदि जो नागरिक या सैनिक किसी भी कानून प्रणाली के लिए अज्ञात हैं, लोगों को एक ही बेड़ी में आपस में जकड़कर रखना और उन्हें खुली ट्रकों में 15-15 घंटों तक रखना, लोगों को बंधक बनाना, गैरहाजिर लोगों का हाजिर कराने के लिए उनकी संपत्ति को जब्त और नष्ट करना, हिंदू और मुसलिम एकता के परिणाम जताने के लिए एक हिंदू और एक मुसलमान को एक ही बेड़ी में जकड़कर रखना, भारतीय घरों का पानी और बिजली काट देना, भारतीय घरों से पंखे हटाकर, यूरोपीय को देना....ये सब उस मार्शल लॉ प्रशासन की अनेक घटनाओं में से कुछ एक हैं जिसने पंजाब में आतंक राज कायम किया है तथा जनता को हिलाकर रख दिया।

आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

शुभा अध्यापिका हैं और रोहतक में रहती हैं। साहित्य की शास्त्रीय और कैरियरिस्ट खांचों से दूर रहकर उन्होंने वंचित तबकों को उनकी नजर से देखने की कुव्वत हासिल की है। यह बात दीगर है कि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी कविताओं और लेखों के बावजूद उनके लेखन का अधिकांश हिस्सा उनकी डायरियों और इधर-उधर बिखरे उनके कागजों में छिपा पड़ा है। दरअसल लिखने के जरूरी काम को छोड़कर उन्होंने हरियाणा के गांव-गांव जाकर नवजागरण आंदोलन की अलख जगाने का ज्यादा जरूरी और बीहड़ रास्ता चुना है। यह बातचीत भी एक गांव में चल रही एक वर्कशाप के बीच की गई है।

कलरव- भारत की आजादी की लड़ाई में महिलाओं की भूमिका को आप किस तरह देखती हैं ?

शुभा- महिलाओं ने आजादी की लड़ाई में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया। यूं कहिए कि वे हर धारा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थीं। कांग्रेस के संघर्ष में महिलाओं की भूमिका अहम थी, तो क्रांतिकारी धारा में भी वो मुश्किल जिम्मेदारियां निभा रही थीं। कम्युनिस्ट पार्टी के अस्तित्व में आने पर भी नौसैनिक विद्रोह, रेलवे हड़ताल, मजदूर आंदोलन आदि में वे अग्रणी रहीं। काफी पहले बिरसा मुंडा आदि से जुड़े आदिवासी संघर्षों में भी महिलाएं आपको सक्रिय भूमिका में नजर आएंगी।

कलरव- महिलाओं ने आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया लेकिन उनकी भूमिका शायद पुरुष नेतृत्व का सहयोग करने तक रह गई ?

शुभा- दरअसल नेतृत्व की छवि पुरुष की मानी जाती रही है। इसलिए इतिहास में पुरुष नेतृत्व ही प्रोजेक्ट किया गया। औरतों के संघर्षों का इतिहास लिखा जाना बाकी है। हकीकत यह है कि महिलाएं आजादी की लड़ाई में नेतृत्वकारी भूमिका में थीं। जनवादी महिला समिति में मुझे खुद गोदावरी पारुलेकर के साथ काम करते हुए मालूम नहीं था कि उन्होंने आजादी की लड़ाई में कैसा जबरदस्त संघर्ष किया था। कितने लोग जानते हैं कि बंधुआ लोगों को छुड़ाने में गोदावरी की भूमिका क्या थी...और स्वराज्य से में मिलती रही जिन्होंने तेलंगाना के सशस्त्र संघर्ष किया था। अहिल्या रांगडेकर जैसी आजादी की लड़ाई की नेता भी भीषण संघर्षों से गुजरीं और बाद में भी संघर्षरत रहीं।

कवयित्री शुभा से बातचीत

आजादी की लड़ाई के दौरान आदमियों पर निगरानी रखी जाती थी तो स्त्रियां ही काम संभालती थीं। असहयोग आंदोलन में भी अरुणा आसफ अली किस तरह, कितने वेश बदलकर नेतृत्व दे रही थीं, सोचना भी रोमांचित करता है। दांडी मार्च में सरोजनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, कमला नेहरू आदि ने एकाध नहीं पचासों जगहों पर दृढ़तापूर्वक नेतृत्वकारी भूमिका निभाई। आंदोलनकारी स्त्रियों की छवियां बेहद जीवंत रहीं लेकिन वर्तमान समय विस्मृति का है। आजादी के पूरे आंदोलन को लेकर विस्मृति हो, गांधी-नेहरू तक की छवियां धूमिल पड़ी हों तो स्त्रियों के संघर्षों की छवि और कम दिखाई देगी, जिसे पहचान ही नहीं मिली थी। दुर्गा भाभी का नाम भगत सिंह के साथ जुड़कर पापुलर हो गया। कैप्टन लक्ष्मी सहगल 90 साल की उम्र में भी अभी तक क्लीनिक जाती हैं मगर ज्यादातर पढ़े-लिखे लोग उनके बारे में बिल्कुल नहीं जानते हैं। एक नुस्खे की तरह उनका नाम लिया जाता है कि वह सुभाष चंद्र बोस के साथ थीं। हालांकि उमा चक्रवर्ती, राधा कुमार, आशारानी वोहरा, रेणु चक्रवर्ती आदि ने आजादी की लड़ाई में स्त्रियों के संघर्ष पर लिखा है। काम हो रहा है लेकिन वैसा नहीं जैसा संगठित ढंग से होना चाहिए। जरूरी है कि सरकार भी जिम्मेदारी ले। विश्वविद्यालयों में प्रोजेक्ट्स बनें, महिला इतिहासकारों के कैंपेन खड़े हों।

कलरव- सवाल ये है कि औरतों का एजेंडा इस लड़ाई में कितना शामिल हो पाया था ?

शुभा- बहुत ज्यादा बुनियादी ढंग से शामिल हो पाया था। उत्पादन करने वाले तबके आंदोलन में उतरे तो आजादी की लड़ाई बुनियादी सवालों से जुड़ सकी। इसमें औरतों का बड़ी भूमिका रही। जिस समय ब्रिटेन में भी स्त्रियों को वोट देने का अधिकार नहीं था। भारत में तब यह मांग सरोजनी नायडू ने और क्रेनिट मार्गेट जैसी

जो अग्रिम मोर्चे पर रहीं

भारतीय समाज में नई स्फूर्ति और स्वतंत्रता संघर्ष में नए जोश के लिए पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया। 1857 की शुरुआत में महिलाओं ने भारतीय स्वतंत्रता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए न केवल आंदोलनों में सक्रिय हिस्सेदारी की उनका नेतृत्व किया बल्कि अन्य आंदोलनों में पूरी सक्रियता से सहयोग किया। इनमें मुख्य रूप से महारानी अहिल्याबाई होलकर और रानी लक्ष्मीबाई सबसे प्रसिद्ध रहीं। इन्होंने अपने कार्यों से पूरी भारतीय राजनीति में नवीनता का संचार किया।

1857 की क्रांति के पश्चात अंग्रेजों को भारतीय संघर्ष की स्थिति स्पष्ट हो चुकी थी इसीलिए उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी को हटा दिया। 1857 के बाद देश में नवजागरण का सूत्रपात हुआ। 19वीं सदी में सामाजिक और शैक्षिक स्थिति में सुधार आया। इसमें मुख्य रूप से महात्मा गांधी के अहिंसा के रास्ते को मुख्य रूप से अपनाया गया। महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन में महिलाओं ने बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया। इनमें कुछ महिलाओं ने स्वदेशी आंदोलन में महत्वपूर्ण अदा की। सरोजनी नायडू, श्रीमती बसंती देवी, बी अम्मा व दुर्गाबाई देशमुख का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन में पढ़ी लिखी ही नहीं, ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं ने भी हिस्सा लिया। सरला देवी, सुशीला नायर, मुत्थुलक्ष्मी रेड्डी, राजकुमारी अमृत कौर, सुचेता कृपलानी और अरुणा आसफ अली जैसी वीरांगनाओं ने विभिन्न आंदोलनों का नेतृत्व किया। कस्तूरबा गांधी की भी स्वतंत्रता आंदोलन में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

प्रस्तुति : संध्या

नेता उठा रही थीं। आयरलैंड के आंदोलन से इमारी नेताओं ने वैचारिक तालमेल बैठाया, वहां से आईं महिलाओं ने आंदोलन ज्वाइन किया और आजादी की लड़ाई का डिमांड चार्टर बुनियादी सवालों से समृद्ध हुआ। अमेरिका तक में अब जाकर औरतों को राष्ट्रपति चुनाव लड़ने का अधिकार मिल पाया है। भारत में आजादी मिलने के वक्त बहुत से तबकों के अधिकार मारे गए। स्त्रियों को भी उनके हक मिल सके। इसके बावजूद आजादी के आंदोलन में स्त्रियां अपने एजेंडे को शामिल कर सकीं यहीं तो आजाद भारत में स्त्रियों के अधिकारों से जुड़े बहुत से कानून बन सके। इस लिहाज से सरोजनी नायडू आर्टिकुलेटर हैं। कम्युनिस्ट महिलाएं हैं जो जमीन की लड़ाई लड़ रही थीं। दरअसल स्त्रियों ने ही राष्ट्रीय आंदोलन में बहुत सी नई चीजें शामिल कीं। गांधी जैसे नेता पर इनका असर पड़ा। 1917 में रूस की क्रांति के बाद रेडिकलाइजेशन का असर हिंदुस्तान पर भी पड़ा औ स्त्री विमर्श व राष्ट्रीय आंदोलन को गहराई मिली।

कलरव- तो क्या यह समझा जाए कि स्त्री विमर्श से आजादी की लड़ाई को ताकत मिली?

शुभा- बिल्कुल। आधुनिक चेतना के बिना राष्ट्रीय आंदोलन संभव नहीं था। स्त्री विमर्श के उस समय की बहसों का काफी हिस्सा दबा हुआ है। पं.रमाबाई को ही देखिए, वे किस चीज से संघर्ष करते हुए क्रांतिकारियों से संपर्क करती हैं। ब्रिटेन-अमेरिका जाकर समर्थन जुटाती हैं, किताब लिखती हैं ताकि हिंदू स्त्री को उसकी नारकीय स्थितियों से मुक्ति मिल सके। महर्षि दयानंद उन्हें कुचाली कहते हैं। अपने उद्देश्य के लिए ही रमाबाई ईसाई धर्म स्वीकार करती हैं। ईसा की करुणामय और मानवीय छवि उन्हें आकर्षित करती है। वे एक संघर्षशील दर्शन की खोज में हैं और ईसाई धर्मशास्त्रियों से उनकी बहस होती है। वे एक ऐसी निखरी हुई चेतना के लिए लड़ रही हैं जो किसी धर्म में उपलब्ध नहीं थी। इस तरह के संघर्षों ने निश्चय ही आजादी की लड़ाई को समृद्ध किया। यह बात अलग है कि आजादी के दौरान बहुत से समझौतों ने इस संघर्ष के नतीजों को ढकने की कोशिश की थी।

कलरव- समझौतों से आपका अभिप्राय क्या है कि आजादी की लड़ाई के दौरान विकसित हुए मूल्यों को बाधित किया गया?

शुभा- हां, ऐसा ही हुआ। मूलगामी परिवर्तन नहीं किया गया। सामंती शक्तियों को संरक्षण दिया गया। मेकअप बदलकर वही राजे-रजवाड़े और भूस्वामी फिर सत्ता में आ गए। भूमि सुधार नहीं हुआ तो सामंती विचारधाराओं का मौलिक आधार बना रहा। इस तरह आधुनिकता ने पुरातनपंथी चीजों से समझौता कर लिया। फिर सती का ग्लोरीफिकेशन भी हुआ औ स्त्री को नीची नजर दे खा जाता रहा। गोदान में राय साहब औ खन्ना साहब के बीच समझौता इसी तरह स्त्रियों और गरीब मजदूरों को नुकसान पहुंचाता है। दरअसल सामंतवाद और पूंजीवाद ने हाथ मिलाया और पितृसत्ता पहले से भी ज्यादा मजबूत, ज्यादा क्रूर हो गई। बाल विवाह, सती प्रथा, लड़कियों की हत्या, कन्या भ्रूण हत्या आदि इसी समझौते के कारण संभव हुई है।

कलरव- मगर आजादी के बाद भारत में स्त्री शिक्षा पर तो बेहद बल दिया गया। इससे किस तरह का परिवर्तन आया?

शुभा- शिक्षा मिली, परिवर्तन भी हुआ मगर सत्ता विमर्श और कैरियर में सब कुछ काम आ गया। हिंदुस्तान का जो मध्यवर्ग प्रबोधन की भूमिका में था, उसने वह भूमिका छोड़ दी। वह आत्मग्रस्तता की भूमिका में आ गया। एक तरह से उसने शिक्षा के साथ विश्वासघात किया। शिक्षा के कैरियर में बदलते हुए भी तब तक कुछ गनीमत थी जब तक देश को आत्मनिर्भर बनाने में योगदान के नेहरू के स्लोगन से उसका कुछ रिश्ता था। धीरे-धीरे सिर्फ कैरियर और पैसा कमाने का जरिया बन गई। जीवन मूल्य विकसित करना उसका काम नहीं रहा। ऐसे माहौल में एक समझौता यह हुआ कि स्त्रियां शिक्षित हों, कमाई करें पितृसत्ता की चाकरी करें और भूल कर भी सामाजिक भूमिका अदा न करें। मतलब कि महिलाओं के शिक्षित होने का लाभ महिलाओं को नहीं मिला। उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं की संख्या के अनुपात में महिला आंदोलन खड़े नहीं हुए। बीच का लंबा अरसा तो महिला आंदोलन के लिहाज से खामोश है। 60 के बाद छोटे-छोटे ग्रुप उभरते हैं और 80 के बाद एक उभार दिखाई देता है। दरअसल शिक्षित महिलाएं उसी मध्यवर्ग का हिस्सा बनी हैं जो स्कूलों-कालेजों में पढ़ाती हैं और घर में घूंघट निकालती हैं। स्त्रियों के आत्मपक्ष को निखारने का काम शिक्षा के जरिये काफी कम हुआ है। फिर शिक्षित महिलाओं को टारगेट भी किया गया। सती प्रथा का विरोध कर रही शिक्षित महिलाओं पर शंकराचार्य ने घटिया टिप्पणियां कीं। शरद यादव ने उन्हें परकटी कहा और पूछा कि वे संसद में बैठेंगी तो रोटी कौन बनाएगा।

कलरव- मौजूदा वक्त की चुनौतियां आजादी की लड़ाई की तुलना में किस तरह भिन्न हैं?

शुभा- पूंजी की केंद्रीकरण की ताकत बढ़ी है। पूंजी-राजनीति को स्वतंत्र नागरिक, स्वतंत्र राष्ट्र, राष्ट्र राज्य की अवधारणा को सपोर्ट करने को मजबूर थे। आज इस तरह की कोई जरूरत न होने की बात की जा रही है। किसी भी राष्ट्र की स्वायत्तता, संप्रभुता कभी भी खतरे में पड़ जाती है। इराक, फिलिस्तीन, लेबनान आदि इसके ताजा उदाहरण हैं। खुद हिंदुस्तान पर समझौतों की आड़ में बहुत से दबाव हैं। जाहिर है ऐसे माहौल में महिलाओं के सामने भी बहुत चुनौतियां हैं।

ग्लोबलाइजेशन, वित्तीय पूंजी आदि जो कुछ भी पुकारें, यह खेल पुरुष केंद्रित है। मॉडलिंग, ब्यूटी कांटेस्ट जैसे क्षेत्रों में उतरने या विकल्प चुनने के जो कथित अवसर बाजार स्त्रियों को देता है, सब एक निरंकुश ताकत के जबड़े में हैं, प्रायोजित हैं। स्त्रियों के लिए यह ऐसी स्वतंत्रता है जो मल्टीनेशनल्स के मुनाफे और बड़े देशों के स्वार्थ से निर्धारित होती है। वे ही तय करते हैं कि स्त्री किसके रैंप पर चलेगी, कपड़े बेचेगी और उसकीआधुनिकता कैसी होगी। यानि वह ब्रांड बचते हुए खुद ब्रांड बन जाएगी, उसका आत्मपक्ष नहीं होगा।

हां, यह बात जरूर है कि दुनिया में इस समय जो स्त्री संघर्ष चल रहे हैं वे भी आगे बढ़े हुए हैं। उनका चरित्र ज्यादा विकसित, ज्यादा जटिल और और उनके भीतर व्यापक डिबेट्स हैं। उनमें स्वतंत्र रूप से स्त्रियों के हित के बारे में सोचना और स्त्रियों की नजर से देखना ज्यादा शामिल हुआ है। यानि कि यह बात आई है कि स्त्रियों पर कोई आदर्श न थोपा जाए और उनकी यौनिकता को स्वीकार किया जाए। अपने तौर पर एक स्त्री होते हुए, स्त्री होने को स्वीकार करते हुए खुद को निखारते हुए स्त्रीत्व का असरशन बढ़ा है। मिथकों की दुनिया की छवियों से बाहर यह ठोस पार्थिव स्त्री है और अपनी सारी विविधताओं के साथ है। यह भी सच है कि उसने विकसित आत्मबोध के साथ समाज के विकास के बारे में सोचने की ज्यादा मूलगामी दृष्टि विकसित की है। □

स्त्रियों की स्वाधीनता

श्री राधामोहन गोकुलजी को भगत सिंह और शिव वर्मा जैसे युवकों को वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों तक पहुंचाने का श्रेय दिया जाता है। अपने वक्त के प्राय: सभी बड़े नेताओं, पत्रकारों और साहित्यकारों से उनका संपर्क रहा और उनके बहुत से समकालीन उन्हें अपना प्रेरणास्रोत मानते रहे हैं। उनके इस लेख को प्रकाशित करने का उद्देश्य यह बताना है कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम में समाजवादी-कम्युनिस्ट धारा नवजागरण के बुनियादी सवालों को किस तरह संबोधित कर र ही थी। यह लेख हमने राहुल फाउंडेशन, लखनऊ द्वारा प्रकाशित गोकुलजी के लेखों की पुस्तक स्त्रियों की स्वाधीनता से लिया है।

मेरे शरीर की एक-एक नस, मेरे शरीर का एक-एक रोम और रक्त का एक-एक कण अत्याचार और दासता को किसी भी रूप में देखना नहीं चाहता। आदेश या आज्ञा के शब्द से ही मुझे स्वाभाविक घृणा है। मैं स्वतंत्रता को प्यार करता हूं, स्वाधीनता का उपासक हूं। स्वतंत्रता देवी की वेदी पर प्राण विसर्जन करना ही जीवन है। इस पर मैं एक मदोन्मत्त विश्वास करने वाला हूं। देवियों, मैं तुम्हारी गोद में पला हूं, तुम्हारी स्वाधीनता के लिए मरने में मैं मार्कण्डेय का अनुयायी हूं-

या देवी सर्व भूतेषु बुद्धि रूपेण संस्तिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम:।

पाठक मेरे उपर्युक्त सिद्धांत-वाक्य को न जाने किस दृष्टि से देखेंगे, परंतु मैं तो शेख सादी के शब्दों में यही कहूं-हकरस्तीं सुखन हक न शायद न हुफ्त-अर्थात यह सत्य है, सत्य को छिपाना उचित नहीं।

सच तो यह है कि नारियां आज गुलामों की गुलाम-दासानुदास हैं। प्रकृति के इतिहास के खोजने वाले दूरदर्शी विद्वान कहते हैं कि मनुष्य की आदिम अवस्था में स्त्रियां दासी नहीं थीं, वे सुमित्रा थीं, सहयोगी,सहायिका, संरक्षिका और सहगामिनी थीं। धीरे-धीरे कार्य की सुविधा के लिए पुरुषों ने अधिकतर बाहर के कामों को उठाना शुरू किया और स्त्रियों ने अंत:पुर का काम संभाला। स्त्रियों द्वारा भीतरी काम का भार उठाने का एक प्रधान कारण बच्चों का निरीक्षण और पालन था। पुरुषों में बच्चों को पाल-पोसकर मनुष्य बनाने की उतनी तमीज, उतनी चतुराई, उतनी सावधानी, उतनी सहिष्णुता नहीं होती है। घर के काम में दत्तचित्त रहने के कारण उन्हें शारीरिक परिश्रम करने का और खुली वायु के सेवन करने का अवसर न मिला, इसलिए उनकी शक्ति घट गई और स्वार्थ वश पुरुषों ने इनका नाम अबला रख दिया। कौन नहीं जानता कि पिंजरे में कुछ दिन रहने के बाद पक्षी पहले की तरह उड़ नहीं सकता। कैद में पालतू शेर को शेरों की तरह कुलांचें मारते किसने देखा है? दासताग्रस्त भारतीयों को ही देख लो, इनकी आयु घट गई, आकार छोटे पड़ गए, शरीर पहले सा शक्तिशाली नहीं रहा। इसी प्रकार इनकी मानसिक शक्ति का भी ह्रास हुआ है। यही बात स्वार्थी पुरुषों की अधीनता में स्त्री जाति की हुई। इस प्रत्यक्ष तर्कसिद्ध बात से कौन इनकार कर सकता है?

जिन लोगों में स्त्रियां आज भी बराबर कंधे से कंधा मिलाकर खेती-बारी आदि का काम करती हैं, वह शेरनियों के समान अभय, अपने ही बल से सुरक्षित फिरा करती हैं, क्या मजाल कोई उनका सामना कर पाए। निसंदेह संसार की नारी मात्र की परिस्थिति पर ध्यान देकर देखा जाता है तो मुक कंठ से कहना पड़ता है कि आज स्त्रियां दासानुदास बनी हुई हैं।

पुरुषों की मनोवृत्ति को जरा देखिए, आपको शायद ही कोई ऐसा धर्म मिले जिसने नारियों पर अकारण लांछन न लगाया हो। इन धर्म पुस्तक लिखने वालों के कथनानुसार संसार में जितनी भी पैशाचिक कृतियां होती हैं उनका दायित्व स्त्रियों पर है। कौन-सा अपराध है, जिसकी तह में ये स्त्रियां नहीं हैं? सुभान अल्लाह, कैसी बहादुरी की बात है, मैं तो इन मिथ्यावादी पुरुषों के साथ स्वर्ग में रहना भी कदाचित पसंद न करूंगा। बल्कि दया, क्षमा और प्रेम की मूर्ति स्त्रियों के साथ नर्क में रहना अपना सौभाग्य समझूंगा। याद रहे कि पुरुष-बल और साहस की प्रतिमा है तो स्त्री सौंदर्य और प्रेम की प्रतिमूर्ति है। जिस स्थल में ये मन लुभाने वाला सौंदर्य और दया से पिघला देने वाला प्रेम नहीं, वहां जीवन का नीरस होना स्वाभाविक है। तभी तो बाबा मनु कहते हैं-यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता- जहां नारियों की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं। इन्हीं वाक्यों को मैं एक पाश्चात्य पुस्तक में देखता हूं, लेखक कहता है-ह्वेयर वन मैन लव्स वन उमन ऐंड वन वुमन लव्स वन मैन, ऐंजिल्स कम डाउन फ्राम हैवेन ऐंड लिव देयर ऐंड सिंग द प्रेज आफ गाड।

अर्थात-जहां पुरुष एक ही स्त्री से प्रेम करता है और स्त्री एक ही पुरुष से प्रेम करती है, वहां स्वर्ग के देवता आकर निवास करते हैं और परमात्मा का गुणगान करते हैं। मुझसे कोई पूछे तो मैं यही कहूंगा कि स्त्री और पुरुष समान हैं, जो अधिकार पुरुषों के हैं वही स्त्रियों के भी हैं। बल्कि एक अधिकार अधिक है और वह यह कि पुरुष स्त्रियों की रक्षा करें। स्त्रियों और पुरुषों में अनन्य प्रेम, दया और रक्षा का भाव होने से ही सांसारिक सुख का होना संभव है। जो पुरुष अपने को स्त्री का स्वामी और भाग्य-विधाता समझता है, वह हेय है, मनुष्यता से गिरा हुआ नादान है। जो दंपति मित्रों की तरह रहते हैं वही सुखी होते हैं। स्वामी और दास के भाव में सच्चा आदर्श नहीं हो सकता, इसमें तो एक आज्ञा करने वाला है और दूसरा आज्ञा का पालन करने वाला है। हुकूमत और मुहब्बत में बड़ा अंतर है। प्रेम-भय, स्वार्थ, लोभ से अलग वस्तु है। नौकर और मालिक में प्रतिकूलता का भाव होता है, परंतु प्रेमियों में समानता का साम्राज्य रहता है।

रुक्ष स्वभाव का व्यक्ति बहुत बुरा है।

घर के काम में दत्तचित्त रहने के कारण उन्हें शारीरिक परिश्रम करने का और खुली वायु के सेवन करने का अवसर न मिला, इसलिए उनकी शक्ति घट गई और स्वार्थ वश पुरुषों ने इनका नाम अबला रख दिया। कौन नहीं जानता कि पिंजरे में कुछ दिन रहने के बाद पक्षी पहले की तरह उड़ नहीं सकता। कैद में पालतू शेर को शेरों की तरह कुलांचें मारते किसने देखा है?

उसे क्या अधिकार है कि वह प्रसन्नता के सुप्रकाश की हत्या करने उसके स्थान में विवशता का अंधकार किसी के हृदय मंदिर में स्थापित करे? जीवन के आनंद का घात करना जड़ता है, मानवीय अधिकार के विरुद्ध आचरण करना है। पुरुषों को उचित है कि जब घर से जाएं-हंसते हुए, प्रसन्नचित, घर को दैदीप्यमान करते हुए, मुस्कुराते हुए जाएं। उनके घर में जाने से नारी के हृदय कमल विकसित हो उठें, घर के कोने-कोने में आनंद हिलोरें मारने लगे।

बहुतेरों का ऐसा खयाल होता है हम बड़े काम-काजी हैं, सारे दिन गूढ़ राजनीतिक समस्याओं की मीमांसा करते-करते थक जाते हैं। म्युनिसपैलिटी, कौंसिल या एसेंबली के चुनाव के झगड़े में फिरने और विचारने से माथा पिलपिला हो जाता है। अथवा लेन-देन, ब्याज-बट्टा, घाटे-नफे और दुकानदारी संबंधी क्रय-विक्रय, मामले-मुकदमे से हैरान होकर घर आते हैं। ऐसी दशा में जब हम घर आवें तो घर के सब लोगों को चाहिए कि हमारे आराम का खयाल करें। कैसी मजेदार और न्याययुक्त बात है कि वह स्त्री, जो दिन भर छोटे-छोटे बच्चों की सेवा में लगी रहने के कारण एक क्षण भर शांत होकर नहीं बैठ सकी, रोगी बच्चों और वृद्धों की सेवा-सुश्रुषा करने, दवा देने, उन्हें प्रसन्न रखने और जुदा-जुदा प्रकार के पथ्य बनाकर देने में फिरकी की तरह दिन भर फिरती रही है, फिर भी चौके, चूल्हे-चर्खे का काम नहीं भूली, वह तो बिल्कुल नहीं थकी, ताजा दम है। उसका अवश्य ही यह धर्म है कि स्वामी के पधारने पर उनकी सेवा के लिए आज्ञाकारिणी दासी की तरह हाथ बांधे खड़ी मिले।

कैसी मजेदार और न्याययुक्त बात है कि वह स्त्री, जो दिन भर छोटे-छोटे बच्चों की सेवा में लगी रहने के कारण एक क्षण भर शांत होकर नहीं बैठ सकी, रोगी बच्चों और वृद्धों की सेवा-सुश्रुषा करने, दवा देने, उन्हें प्रसन्न रखने और जुदा-जुदा प्रकार के पथ्य बनाकर देने में फिरकी की तरह दिन भर फिरती रही है, फिर भी चौके, चूल्हे-चर्खे का काम नहीं भूली, वह तो बिल्कुल नहीं थकी, ताजा दम है।

ऐसे निर्दयी अन्यायी पुरुषों से संसार के हित की क्या आशा हो सकती है? इनका और डंक वाले बिच्छू का एक सा स्वभाव होता है। ऐसे ही किसी नगर में बैठे रात-दिन एकमात्र स्वार्थ पर ध्यान दिए लखपति करोड़पति बन जाते हैं। उसी नगर में भूखे, नंगे, अपाहिज, भिखमंगे, अकाल पीड़ित, रोगी निस्सहाय बरसाती घास की तरह जगह-जगह फैले दिखाई देते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि इनका हृदय किस धातु का बना है, ये किस मर्ज की दवा हैं, जग में इनके जीवन का क्या सार है, जो डूबते हुए नर-नारियों को देखकर उनको बचाने के लिए, भूखे मरतों को सहायता देने के लिए उतावला नहीं होता? वह निर्दय स्त्री और बच्चों की स्वाधीनता का मूल्य क्या समझेगा?

ऐसे लोग बहुत मिलेंगे जो अपना संदूक और बही-खाते को तो दूसरों के विश्वास पर एक क्षण भर को भी न छोड़ेंगे, लेकिन अपनी स्त्रियों और बच्चों को, उनकी मान और प्रतिष्ठा को हल्के मन से दूसरों को सौंपने में विलंब न करेंगे। ऐसे लोग स्त्रियों की रक्षा, स्वाधीनता का मूल्य कैसे जान सकते हैं? एक मूर्ख ने तो यहां तक कह डाला है कि - आत्मानं सततं रक्षेत दारैरपि- इनकी दृष्टि से नारी का मूल्य सोने-चांदी के मूल्य से बहुत कम है।

किसी धर्म में देखिए नारियों का धन-संपत्ति पर अधिकार ही नहीं। मुसलमानों की शरई में यत्किंचित हो भी, पर हिंदुओं के यहां न इन्हें पिता की संपत्ति में रत्ती भर स्वत्व है और न श्वसुर और पति की संपत्ति में। यह तो केवल दासता के लिए उत्पन्न हुई हैं। मसीह कहता है-नारियों, पति की आज्ञा में रहो- शोपनहार इन्हें सर्वथा अयोग्य ठहराता है। प्रोटिस्टेंट मत का जन्मदाता मार्टिन लूथर इन्हें पुरुषों की समता प्रदान करने में समाज का सर्वनाश देखता है। मुसलमानों के यहां स्त्रियों को कपूर की तरह डिब्बे में बंद रखना ही श्रेयस्कर बताया जाता है, यहूदियों और जैनियों के यहां स्त्रियों की मुक्ति ही नहीं हो सकती, क्योंकि इनका जन्म इनके पुराकृत पापों का दंड है।

इन बेचारियों को हिंदू धर्म का प्रधान धर्मात्मा जुआरी युधिष्ठिर जुआ में हार सकता है, हरिश्चंद्र दान कर सकता है, राम निकालकर जंगल में एकाकी हांक दे सकता है। इस दशा में समझ में नहीं आता किं मनुष्य समाज में नारियों का स्थान क्या है? जिनके स्थान का पता नहीं उनके अधिकार और स्वातंत्र्य का क्या ठिकाना।

अन्यत्र की बात तो जाने दीजिए और हम अधिक जानते भी नहीं, किंतु भारतवर्ष के भीतर स्त्रियों की क्या दशा है? क्या हिंदू, क्या मुसलमान, जिनके यहां देखोगे स्त्रियां भिखारनियों की तरह अपने पतियों और पुत्रों के सामने टके-टके के लिए हाथ फैलती नजर आएंगी। जहां किसी माता, स्त्री, बहन ने चार पैसे मांगे कि पुरुष का पहला सवाल होता है कि कल मैंने एक आना दिया था, उसका क्या हुआ? दूसरा प्रश्न होता है कि -तुम पैसे का क्यो करोगी? कौन काम है जिसके लिए तुम्हें पैसे की जरूरत पड़ी? बेचारी माता और पत्नी भय से कांप उठती है। उनमें यह शक्ति कहां कि पूछ बैठें कि तुम्हारे खाने-पहनने और फुटकर खर्च में कितना उठता है? कितना पैसा है? सबका हिसाब तो बतलाओ? ऐसे कायर भिखमंगी माता की गोद में पले बच्चे कैसे होंगे यह पाठकों के समझने की बात है।

यह माताएं और बहनें अनुमति लें कि क्या करना चाहिए तो उनको मुक्त कंठ से, निर्भीकता के साथ में यही जवाब दूंगा कि जब आपका कोई अधिकार किसी वस्तु पर नहीं है तुम इनकी रक्षा का भार छोड़ दो। घर की चीजों को चोरों से बचाना और अन्य प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट न होने देना तुम्हारे लिए व्यर्थ है। आप साफ कह दें कि या तो हमारा और पुरुषों का स्थान समाज में समान होगा, हम दोनों के अधिकार एक होंगे या हम पुरुषों के हितों की उतनी ही उपेक्षा करेंगी जितनी वे हमारे हितों की करते हैं। हमारे हाथ हैं, पैर हैं, बुद्धि है, हम अपना जीवन स्वतंत्र व्यतीत करेंगी और पुरुषों की गुलामी को आज से नमस्कार है। अब यह न होगा कि आप मनमाने विवाह करें और हमें विधवा बनाकर बैठाएं। अब यह असंभव है कि आप हम पर अत्याचार करें और हम आपका परित्याग न कर सकें। हम भी मनुष्य हैं, थाली, लोटे आदि वस्तुओं की तरह हम उल्लू बनकर ही नहीं रह सकतीं। जिन हाथों ने तुम्हें बनाया है वही हाथ तुम्हें बिगाड़ने में लग जाएंगे तो तुम्हारा ठिकाना न लगेगा। तुमने अगणित दुधमुही बालिकाओं का प्राणघात किया, तुमने न जाने कितनी स्त्रियों को जला दिया, मार डाला, किंतु हमसे ऐसी पशुता आज तक नहीं हुई। यदि निर्लज्जतावश अपनी पूर्व कुकृतियों पर पश्चाताप नहीं कर सकते, यदि तुम्हारे हृदयों में सच्चाई, ईमानदारी का पौधा नहीं उग सकता तो हम को हार कर मार्कण्डेय चित्रित महाकाली का भीषण रूप

धारण करना पड़ेगा और वह तुम्हारे अमंगल का हेतु होगा। इसमें हमारा भी अमंगल अवश्य है, क्योंकि तुमने जो अत्याचार हम पर किए हैं उससे तुम्हारा भी अमंगल हुआ है। हमारे तुम्हारे स्वार्थ दूसरे के साथ अनिवार्य रूप से संलग्न हैं, लेकिन हमें अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए थोड़े समय के लिए ऐसे मार्ग का अवलंबन करना पड़ेगा जो न हमको प्रिय है न संसार के लिए हितकर है। हे पुरुषों भारत की दशा सुधारने के लिए अब परमावश्यक हो रहा है कि मातृशक्ति कान पकड़कर तुमको सीधे रास्ते पर लाएं।

हम देखते हैं कि कोई स्त्री किसी पुरुष के साथ बात करते देखी गई कि लोगों ने उंगली उठाई। जो कहीं वह किसी बात पर हंस दी हो तो मानो गजब ही हो गया। लेकिन क्या पुरुषों के आचार-विचार पर, चलन व्यवहार पर इतनी ही कड़ी दृष्टि रखी जाती है? पुरुषों ने अपनी घृणित कामवासना-संतृप्ति के लिए कुटिलताओं के बाजार खोल रखे हैं? क्या इन वेश्यालयों के सृष्टा पुरुष नहीं हैं? क्या स्त्रियां भी प्रत्यक्ष रूप से ऐसा करती देखी जाती हैं? क्या पुरुषों का परम कर्तव्य नहीं है कि जैसा आप खाएं पहनें वैसा ही अन्न-वस्त्र स्त्रियों को दें? जिस धर्मपरायणता और कर्तव्यशीलता का बंधन वह स्त्रियों पर लगाते हैं उन्हीं बंधनों में अपने आपको भी सच्चाई के साथ बांधें। जिस व्यवस्था को हम अपने लिए पसंद नहीं करते, उसे दूसरे के लिए निर्धारित करना क्या न्याय है? धर्म है? मनुष्यता है?

हमें यह मालूम होना चाहिए कि जस तरह से जेल में कैदी वस्तुओं के अभाव के कारण जरा-जरा सी चीज के लिए लालायित रहता है, वैसे ही अगणित पीढ़ियों से पुरुषों के बंधन में पड़ी हुई नारियां भी जिन वस्तुओं के अभाव से लगातार दुख पाती हैं, उनके लिए लालायित रहती हैं। यह दोष स्त्रीत्व का नहीं है, किंतु अवस्था और परिवार का है। बुद्धि में स्त्रियां पुरुषों से बहुत अच्छी होती हैं। बाल्य काल में जब यह स्वतंत्र रहती हैं और शाला में पढ़ने जाती हैं, तब कोई भी लड़का इनसे पढ़ने-लिखने, सोचने-विचारने में बाजी नहीं ले जा सकता। जो चाहें हमारे कथन का अनुभव करके देखें। बड़े होने पर जब स्त्रियां पराधीनता के बंधन में पड़ जाती हैं और पठन-पाठन के क्षेत्र से हटकर गृहस्थी के कामों में व्यस्त रहती हैं तब उनकी बुद्धि का कार्यक्षेत्र ही दूसरा होता है। अपने क्षेत्र में वह पुरुषों से कहीं अधिक सावधान और चतुर होती हैं।

अंत में मैं विनम्रता के साथ निवेदन करता हूं कि जो कुछ मैंने लिखा है, वह मेरे शुद्ध, सच्चे और निष्कपट विचार हैं। यह मेरे विचार हैं औरों का अनुगमन नहीं, नकल नहीं, किसी को चिढ़ाने के लिए कल्पना और मनगढ़ंत नहीं। विचारहीन विश्वास से अनुधावन, अनुसंधान और खोज निश्चय ही ऊंचा स्थान रखते हैं। भय से विवेक का पद बहुत ऊंचा है। जीवित जगत जीवितों से ही संचालित हो सकता है और होना भी चाहिए। इसकी बागडोर मुर्दों के हाथों में सौंपना ठीक नहीं, मुर्दे इसे उचित मार्ग पर रखने में असमर्थ हैं। पोथियों पर मर मिटना भूल है। उनके लिखने वाले मरकर चले गए, अपने समय को अपने साथ ले गए। अब उनका शासन असंभव है। न उनका शव राजा हो सकता है और न चिता सिंहासन। मनुष्य मुर्दों के भरोसे संसार में जी नहीं सकता। पोथीदास मत बनो, ज्ञानी, अनुभव, निष्पक्ष विचारक बनो। आंख खोलकर जगत व्यवहार को समयानुकूल नियंत्रित करना तुम्हारा धर्म है।

बहनों, नरक का भय और स्वर्ग का लालच छोड़ दो। धर्मयाजकों की प्रतिष्ठा, संप्रदायों का पक्षपात, हतप्रतिभ बनाने वाले कारण हैं। कागजों की पुस्तक से प्रकृति की पुस्तक पूज्यतर है और पुस्तकों की अपेक्षा ज्ञान की महिमा बड़ी है। पुस्तकें प्रायः पुरुषों द्वारा लिखी जाती हैं, इसलिए स्त्रियां उनको मानने को बाध्य नहीं हो सकतीं।

दिवंगत धर्मज्ञों से आज के धर्मज्ञ पंडित कम चतुर और ज्ञाता नहीं हैं, आंख खोलकर देखो, अधिक क्या कह सकता हूं। हम इस प्रत्यक्ष जगत को भी राई भर भी नहीं जान सके, तो उस लोक के लिए क्यों सर फोड़ें, जिसकी बाबत आज तक किसी को कुछ भी मालूम नहीं हो सका। नकद धर्म की परख करो, उधार धर्म के पीछे फिरना भूल है-नौ नगद न सौ उधार।

हमारे बाप-दादाओं की बुद्धि दासताग्रस्त थी, हमारे धर्मयाजक नादान और पशुवत निर्दय थे। ऐसा न होता तो काशी करोत इत्यादि अनेक अमानुषिक प्रधानों का प्रादुर्भाव क्यों होता? दासता से अंधविश्वास उत्पन्न होता है। स्वाधीनता और स्वतंत्र विचार से सत्य की स्थापना होती है। सत्य की स्थापना में नरों और नारियों के समान हाथ लगाने की जरूरत है। जब उसके मस्तिष्क स्वतंत्र होंगे तो सब अपने-अपने उत्तम विचारों को प्रकट कर सकेंगे और संसार ज्ञान-धन से अनुदिन परिपूर्ण होता चला जाएगा।

बहनों, नरक का भय और स्वर्ग का लालच छोड़ दो। धर्मयाजकों की प्रतिष्ठा, संप्रदायों का पक्षपात, हतप्रतिभ बनाने वाले कारण हैं। कागजों की पुस्तक से प्रकृति की पुस्तक पूज्यतर है और पुस्तकों की अपेक्षा ज्ञान की महिमा बड़ी है। पुस्तकें प्रायः पुरुषों द्वारा लिखी जाती हैं, इसलिए स्त्रियां उनको मानने को बाध्य नहीं हो सकतीं। जो धर्म शास्त्रों की, वेद, बाइबिल, कुरान आदि की लिखने वाली स्त्रियां होतीं तो आज उनके भाव, भाषा, आदेश, उपदेश में बड़ा अंतर होता। इन पुस्तकों में तो स्त्रियों की अवज्ञा, प्रतिष्ठा, इनका अनादर भरा पड़ा है। स्त्रियां पुरुषों के भोग्य की सामग्री बताई गई हैं।

इन पुस्तकों के वाक्यों से सिद्ध होता है कि ईश्वरीय ज्ञान के दावेदार महाशयगण कुछ नहीं जानते थे। उन्हें मनुष्यों के स्वत्वों और दायित्वों का कुछ भी पता न था। वे स्वातंत्र्य के शत्रु और पशु बल के पोषक थे। उनके सिद्धांतों ने मनुष्यों में ज्ञान की कमी और पशुता की वृद्धि की। मैं मानता हूं कि मनुष्य में से पशुता जा नहीं सकती, किंतु शुद्ध सच्चे ज्ञान से, उसका सुधार हो सकता है। पुरुष स्वतंत्र हों, दास और स्वामी का भाव नष्ट हो, स्वतंत्रता देवी का धर्म भूमंडल पर प्रधान हो, इन्हीं की उपासना करने हम अपना जीवन सार्थक कर सकते हैं।

अहा स्वतंत्रे देवि, आप क्या सदा अंतरिक्ष में ही निवास करेंगी? क्या सदा-सर्वदा आपका वास कवियों और प्रेमियों के हृदयों में ही छिपा रहेगा? क्या आपके दर्शन हमें स्वप्न में ही मिल सकेंगे? नहीं देवि, आप प्रकट होकर सामने पधारें। हम भारत के नर-नारी आपकी उपासना करें।

(चांद नारी-जागरण अंक, नवंबर 1934ई.)

अमर शहीद राम प्रसाद बिस्मिल का अंतिम संदेश

(1927 को काकोरी के चार शहीदों को फांसी दी गई। जनवरी, 1928 के किरती में भगत सिंह ने विद्रोही नाम से इन पर कुछ लेख छपवाए। यह उन्हीं में से एक है)

आपने एक लेख निज-जीवन घटा लिखा था जो गोरखपुर के स्वदेश अखबार में छपा था। उसी का संक्षेप हम पाठकों की सेवा में रख रहे हैं, ताकि वे जान सकें कि उन क्रांतिकारी वीरों के शहादत के समय क्या विचार थे-

19 तारीख सुबह साढ़े छह बजे फांसी का समय निश्चित हो चुका है। कोई चिंता नहीं, ईश्वर की कृपा से मैं बार-बार जन्म लूंगा और मेरा उद्देश्य होगा कि संसार में पूर्ण स्वतंत्रता हो, कि प्रकृति की देन पर सबका एक सा अधिकार हो, कि कोई किसी पर शासन न करे। सभी जगह लोगों के अपने पंचायती राज्य स्थापित हों। अब मैं उन बातों का उल्लेख कर देना जरूरी समझता हूं जो सेशन जज के 6 अप्रैल, 1927 के फैसले के बाद काकोरी के कैदियों के साथ हुई। 18 जुलाई को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। वह सिर्फ मौत की सजा पाए चार कैदियों की ओस से थी। लेकिन पुलिस की ओर से सजा बढ़ाने की अपील हुई। फिर बाकी कैदियों ने भी अपील कर दी, लेकिन श्री शचींद्रनाथ सान्याल, श्री भूपेंद्रनाथ सान्याल और इकबालिया गवाह बनवारीलाल ने अपील नहीं की थी और फिर प्रणव चटर्जी ने इकबाल कर लिया और अपील वापस ले ली। फांसीवालों की सजा बहाल रही और जोगेशचंद्र चटर्जी, श्री गोविंदचरण क्यू और श्री मुकंदीलाल जी को दस साल की उम्र कैद हो गई। श्री सुरेशचंद भट्टाचार्य और श्री विष्णुशरण दुबलिस की सजा सात-सात साल से बढ़ाकर दस-दस साल कर दी गई। रामनाथ पांडे की तीन साल और प्रणवेश की कैद चार साल रह गई। प्रेमकिशन खन्ना पर डकैती की सजा कम कर पांच वर्ष कैद रह गई। बाकी सबकी अपीलें खारिज कर दी गईं। अशफाक की मौत की सजा बनी रही, शचींद्रनाथ बख्शी ने अपील ही नहीं की थी।

अपील से पहले ही मैंने गवर्नर के पास प्रार्थनापत्र लिख भेजा था जिसमें मैंने कहा था कि मैं गुप्त षडयंत्रों में हिस्सा न लिया करूंगा और कोई संबंध भी उनसे नहीं रखूंगा। रहम की अपील में भी इस प्रार्थनापत्र का जिक्र कर दिया था। लेकिन जजों ने कोई ध्यान देना जरूरी न समझा। जेल से अपना बचाव मैंने खुद लिखकर चीफ कोर्ट में भेजा, लेकिन जजों ने कहा कि यह बचाव रामप्रसाद का लिखा हुआ नहीं, जरूर किसी बड़े सयाने आदमी की मदद से लिखा गया है। उन्हें उन्होंने यह कह दिया कि रामप्रसाद बड़ा भयानक क्रांतिकारी है और यदि रिहा हुआ तो फिर वही काम करेगा।

> **वह सिर्फ मौत की सजा पाए चार कैदियों की ओस से थी। लेकिन पुलिस की ओर से सजा बढ़ाने की अपील हुई। फिर बाकी कैदियों ने भी अपील कर दी, लेकिन श्री शचींद्रनाथ सान्याल, श्री भूपेंद्रनाथ सान्याल और इकबालिया गवाह बनवारीलाल ने अपील नहीं की थी और फिर प्रणव चटर्जी ने इकबाल कर लिया और अपील वापस ले ली। फांसीवालों की सजा बहाल रही और जोगेशचंद्र चटर्जी, श्री गोविंदचरण क्यू और श्री मुकंदीलाल जी को दस साल की उम्र कैद हो गई।**

उन्होंने (मेरी) बुद्धिमत्ता-समझदारी आदि की प्रशंसा करने के बाद कहा कि यह एक ऐसा निर्दयी कातिल है, जो उन पर भी गोली चला सकता है जिसके साथ उसकी कोई दुश्मनी नहीं है। खैर, कलम उनके हाथ थी, जो चाहते वह लिखते। लेकिन चीफ कोर्ट के फैसले से स्पष्ट पता चलता है कि बदला लेने के विचार से ही हमें फांसी की सजा दी गई है।

अपील खारिज हो गई, फिर लाट साहिब और वायसराय के पास रहम का प्रार्थनापत्र दिया गया। श्री राजिंद्रनाथ लाहिड़ी, श्री अशफाकउल्ला खान, श्रीरोशनसिंह और रामप्रसाद की मौत की सजा बदलने के लिए यूपी कौंसिल के लगभग सभी चुने हुए सदस्यों के हस्ताक्षर से एक प्रार्थनापत्र दिया गया। मेरे पिता के प्रयत्नों से 250 आनरेरी मजिस्ट्रेटों और बड़े-बड़े जमींदारों के हस्ताक्षरों सहित एक अलग प्रार्थनापत्र दिया गया। असेंबली और कौंसिल आफ स्टेट के 108 सदस्यों नेभी हमारी मौत की सजा बदलने के लिए वायसराय के पास प्रार्थनापत्र दिया। उन्होंने यह भी कहा कि जज ने कहा था कि यदि लोग पश्चाताप करें तो सजाएं बहुत कम कर दी जाएंगी। चारों ओर से इतनी घोषणाएं हो चुकी थीं, लेकिन एक सिरे से दूसरे सिरे तक सभी हमारे रक्त के प्यासे थे और वायसराय ने भी हमारी एक न सुनी।

पंडित मदन मोहन मालवीय जी कई और सज्जनों को लेकर वायसराय से मिले। सबको उम्मीद थी कि अब जरूर मौत की सजा हटा ली जाएगीष लेकिन क्या होना था। चुपचाप दशहरे से दो दिन पहले सभी जेलों में तार दे दिया गया कि फांसी की तारीख निश्चित हो गई है। जब जेल के सुपरिंटेंडेंट ने यह तार मुझे सुनाया तो मैंने कहा, अच्छा आप अपना काम करो। लेकिन उनके जोर देकर कहने से एक रहम का तार बादशाह को भेज दिया। उस समय प्रीवी कौंसिल में अपील करने का विचार भी मन में आया। श्री मोहनलाल सक्सेना वकील को तार दिया गया। जब उन्हें बताया गया कि वायसराय ने सभी की दरख्वास्तें नामंजूर कर दी हैं तो किसी को यकीन ही नहीं हो रहा था ा उनसे कह-सुनकर प्रिवी कौंसिल में अपील करवाई गई। परिणाम पहले ही पता था, अपील खारिज हो गई।

अब सवाल उठेगा कि सब कुछ पहले से ही जानते हुए भी मैंने माफीनामा, रहम की दरख्वास्त, अपीलों पर अपीलें क्यों लिख-लिख भेजीं ? मुझे तो इसका एक ही कारण समझ में आता है कि राजनीति एक शतरंज का खेल है। सरकार ने बंगाल आर्डिनेंस के कैदियों संबंधी असेंबली में जोर देकर कहा था कि उनके खिलाफ बड़े सबूत हैं, जो गवाहों की सुरक्षा के लिए हम खुली अदालत में पेश नहीं करते। हालांकि दक्षिणेश्वर बम कांड और शोभा बाजार षडयंत्र के मुकदमे खुली अदालत में चले। खुफिलाय पुलिस के सुपरिंटेंडेंट को मारने का मुकदमा भी खुली अदालत में चला। काकोरी केस भी डेढ़ साल चला, सरकार की ओर से 300 गवाह पेश हुए। कभी

किसी गवाह पर मुसीबत न आई, हालांकि यह भी कहा गया था कि काकोरी षडयंत्र की शुरुआत बंगाल में हुई। सरकारी घोषणाओं की पोल खोलने की इच्छा से ही मैंने यह सब किया। माफीनामे भी लिखे, अपीलें भी कीं, लेकिन क्या होना था। असलियत तो यह है कि जोरावर मारे भी और रोने भी न दे।

हमारे जिंदा रहने से कहीं विद्रोह नहीं हो चला था। अब तक क्रांतिकारियों के लिए किसी ने इतनी भारी सिफारिश नहीं की थी, लेकिन सरकार को इससे क्या ? उसे अपनी ताकत पर नाज है, अपने बल पर अहंकार है। सर विलियम मौरिस ने स्वयं शाहजहांपुर और इलाहाबाद के दंगों में मौत की सजा पाने वालों की मौत की सजाएं माफ की थीं, जबकि वहां रोज दंगे होते थे। यदि हमारी सजा कम करने से औरों की हिम्मत बढ़ती है तो यही बात सांप्रदायिक दंगों के संबंध में भी कही जा सकती है। लेकिन यहां मामला ही कुछ और था।

आज प्राण उत्सर्ग करते हुए मुझे कोई निराशा नहीं हो रही कि यह व्यर्थ गए। बलिदान कभी व्यर्थ नहीं जाते। क्या पता हमारे जैसे लोगों की ठंडी आहों से ही यह परिणाम हुआ कि लार्ड बर्कन हैड के दिमाग में हिंदुस्तान की जंजीरें जकड़ने का विचार आया और उसने रायल कमिशन भेजा, जिसके बायकाट के लिए हिंदू-मुसलमानों में फिर कुछ एकता हो रही है। ईश्वर करे कि इनको शीघ्र ही सद्बुद्धि आए और यह फिर एक हो जाएं। हमारी अपील नामंजूर होते ही मैंने श्री मोहनलाल सक्सेना से कहा था कि इस बार हमारी यादगार मनाने के लिए हिंदू-मुसलमान नेताओं को इकट्ठा बुलाया जाए।

अशफाक उल्ला को सरकार ने रामप्रसाद का दायां हाथ बताया है। अशफाक कट्टर मुसलमान होते हुए भी रामप्रसाद जैसे कट्टर आर्यसमाजी का क्रांति में दाहिना हाथ हो सकता है तो क्या भारत के अन्य हिंदू-मुसलमान आजादी के लिए अपने छोटे-मोटे लाभ भुला एक नहीं हो सकते? अशफाक तो पहले ऐसे मुसलमान हैं जिन्हें कि बंगाली क्रांतिकारी पार्टी के संबंध में फांसी दी जा रही है। ईश्वर ने मेरी पुकार सुन ली। मेरा काम खत्म हो गया। मैंने मुसलमानों में से एक नौजवान निकालकर हिंदुस्तान को यह दिखा दिया है कि मुसलिम नौजवान भी हिंदू नौजवानों से बढ़-चढ़कर देश के लिए बलिदान दे सकता है और वह सभी परीक्षाओं में सफल हुआ। अब यह कहने की हिम्मत किसी में नहीं होनी चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। यह पहला तजुर्बा था जो पूरा हुआ।

अशफाक, ईश्वर तुम्हारी आत्मा को शांति दे। तुमने मेरी और देश के सभी मुसलमानों की लाज बचा ली है और यह दिखा दिया है कि भारत में भी तुर्की और मिस्र जैसे मुसलमान युवक मिल सकते हैं।

अब देशवासियों के सामने यही प्रार्थना है कि यदि उन्हें हमारे मरने का जरा भी अफसोस है तो वे जैसे भी हो, हिंदू-मुसलिम एकता स्थापित करें-यही हमारी आखिरी इच्छा थी, यही हमारी यादगार हो सकती है। सभी धर्मों और सभी पार्टियों को कांग्रेस को ही प्रतिनिधि मानना चाहिए। फिर वह दिन दूर नहीं, जब अंग्रेजों को भारतीयों के आगे शीश झुकाना होगा।

अफसोस तो इसी बात का है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रांतिकारी दल खड़ा कर दिया था, वहीं फ्री रक्षा के लिए मुझे एक पिस्तौल तक न मिला। कोई नौजवान मेरी सहायता के लिए आगे नहीं आया। मेरी नौजवानों से प्रार्थना है कि जब तक सभी लोग पढ़-लिखन जाएं, तब तक कोई भी गुप्त पार्टियों की ओर ध्यान नहीं दे। यदि देश सेवा की इच्छा है तो खुला काम करें।

जो कुछ मैं कह रहा हूं, ठीक वही श्री अशफाक उल्ला खान वारसी का विचार है। अपील लिखते समय लखनऊ जेल में मैंने उनसे बातचीत की थी। श्री अशफाक तो रहम की दरख्वास्त देने के लिए राजी नहीं थे। उन्होंने तो सिर्फ मेरी जिद पर, मेरे कहने पर ही ऐसा किया था।

सरकार से मैंने यहां तक कहा था कि जब तक उसे विश्वास न हो, तब तक मुझे जेल में कैद रखे या किसी दूसरे देश में निर्वासित कर दे और हिंदुस्तान न लौटने दे। लेकिन सरकार को क्या करना था। सरकार को यही मंजूर था कि हमें फांसी जरूर दी जाए, हिंदुस्तानियों के जले दिल पर नमक छिड़का जाए और वे तड़प उठें, कुछ संभल जाएं और हमारे पुनर्जन्म लेकर काम के लिए तैयार होने तक देश की हालत सुधर गई हो।

अब तो मेरी यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के आगे न तो कोई बयान दे और न ही कोई सफाई पेश करे। अपील करने के पीछे एक कारण यह भी था कि फांसी की तारीख बदलवाकर मैं एक बार देशवासियों की सहायता और नवयुवकों का दम देखूं। इसमें मुझे बहुत निराशा हुई। मैंने निश्चय किया था कि संभव हो तो जेल से भाग जाऊं। यदि ऐसा हो सकता तो बाकी तीनों की मौत की सजा भी माफ हो जाती। यदि सरकार न करती तो मैं करवा लेता। इसका तरीका मुझे खूब आता था। मैंने बाहर निकलने के लिए बड़े यत्न किए, लेकिन बाहर से कोई सहायता नहीं मिली। अफसोस तो इसी बात का है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रांतिकारी दल खड़ा कर दिया था, वहीं फ्री रक्षा के लिए मुझे एक पिस्तौल तक न मिला। कोई नौजवान मेरी सहायता के लिए आगे नहीं आया। मेरी नौजवानों से प्रार्थना है कि जब तक सभी लोग पढ़-लिखन जाएं, तब तक कोई भी गुप्त पार्टियों की ओर ध्यान नहीं दे। यदि देश सेवा की इच्छा है तो खुला काम करें। व्यर्थ बातें सुन-सुनकर खयाली पुलाव पकाते हुए अपने जीवन को मुसीबतों में न डालें। अभी गुप्त काम का समय नहीं आया। हमें इस मुकदमे के दौरान बड़े अनुभव हुए लेकिन उनका लाभ उठाने का अवसर सरकार ने हमें नहीं दिया। लेकिन इस बात के लिए हिंदुस्तान और ब्रिटिश सरकार बहुत पछताएगी।

मुलाकात के समय आपने यह भी कहा था कि, क्रांतिकारी लोगों में भी हिम्मत की बहुत कमी है और जनता की हमदर्दी अभी उनके साथ नहीं है। साथ ही इनमें भी प्रांतीयता की भावना बहुत है। परस्पर विश्वास भी नहीं है। इन बातों के कारण हमारी हसरतें दिल में ही रह गईं। मौखिक रूप से इनकार करने से ही मुझे 5000 रुपये नकद और विलायत भेज बैरिस्टर बनने का वायदा मिल रहा था। लेकिन इस बात को घोर पाप समझ कर मैंने इसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। लेकिन अफसोस इस बात का है कि बड़े-बड़े विश्वसनीय कहे जाने वाले साथियों ने अपने सुख के लिए छिप-छिपकर पार्टी को धोखा दिया और हमारे साथ दगा कमाया। □

अशफाक उल्ला का देशवासियों के नाम खत

अशफाक उल्ला भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन के कीमती मोती हैं। वे भगत सिंह से ठीक पहली पीढ़ी के शहीद हैं, रामप्रसाद बिस्मिल के अभिन्न मित्र। खास बात यह है कि वे सोच के धरातल पर बिस्मिल और अपने दूसरे समकालीनों से कहीं ज्यादा प्रखर हैं और वे कोरी आजादी की कल्पना के बजाय अपने समय और समाज के जरूरी सवालों से जूझ रहे हैं। सांप्रदायिकता को लेकर उनकी चिंता उनके इस खत के टुकड़े में भी झलकती है जो फांसी से पहले उन्होंने देशवासियों के नाम लिखा-

आज जबकि मैं यह पैगाम बिरादराने वतन को भेज रहा हूं, इसके बाद मुझको तीन दिन और चार रातें और गुजारनी हैं और फिर मैं हूंगा और आगोशे मादरेवतन होगा। हम लोगों पर जो जुर्म लगाए गए थे वह इस सूरत में पब्लिक में लाए गए कि हमको बहुत से लोग जो गैरतालीमयाफ्ता या हुकूमत के दस्तख्वान की बसेखुर्दा (बची हुई) हड्डियां चचोड़नेवाले थे, डाकू, खूनी, कातिल के लकब से पुकारा किए।

बिरादराने वतन की खिदमत में उनके उस भाई का सलाम पहुंचे जो उनकी इज्जत व नामूसे वतन की खातिर फैजाबाद जेल में कुर्बान हो गया। आज जबकि मैं यह पैगाम बिरादराने वतन को भेज रहा हूं, इसके बाद मुझको तीन दिन और चार रातें और गुजारनी हैं और फिर मैं हूंगा और आगोशे मादरेवतन होगा। हम लोगों पर जो जुर्म लगाए गए थे वह इस सूरत में पब्लिक में लाए गए कि हमको बहुत से लोग जो गैरतालीमयाफ्ता या हुकूमत के दस्तख्वान की बसेखुर्दा (बची हुई) हड्डियां चचोड़नेवाले थे, डाकू, खूनी, कातिल के लकब से पुकारा किए। मैं आज इस फांसी की कोठरी में बैठा हुआ भी खुश हूं और अपने उन भाइयों का शुक्रिया अदा करता हूं। और कहूंगा-

मर मिटा आप पै कौन, आपने यह भी न सुना,
आपकी जान से दूर, आप से शिकवा है मुझे।

खैर, यह तुम्हारा फैल है कि हमारी कुर्बानियों को कबूल न करो और यह हमारा फर्ज है कि तुम बार-बार ठुकराओ मगर हम तुम्हारी ही दम भरे जाएंगे। बिरादराने वतन, मैं उसी पाक व मुकद्दस वतन ही की कसम खाकर कहूंगा कि हम नंगे नामूसेवतन पर कुर्बान हो गए। क्या यह शर्म की बात नहीं थी कि हम अपनी आंखों से देखते कि नित गए मुजालिक हो रहे हैं और गरीब हिंदुस्तानी हर हिस्सायेमुल्क और खित्तयेदुनिया में जलील और रुस्वा हो रहे हैं और कहीं न ठिकाना है न सहारा। किस्सा मुख्तसर ये कि हमारा वतन भी हमारा नहीं। हम पर टैक्स की भरमार, हमारी माली हालत का रोजबरोज गिरते जाना, 33 करोड़ बहादुर हिंदुस्तानी हिंदू और मुसलमान भेड़-बकरियों की मानिंद बनाए गए। हमारे गोरे आका हमें ठोकरें मार दें तो बाजपुर्स न हो। जनरल डायर जलियानवाला बाग को नमूनये हशर बना दे। हमारी माताओं की बेइज्जती करें। हमारे बूढ़ों और बच्चों पर बम के गोले गन-मशीनों की गोलियां बरसाएं और हर नया दिन हमारे लिए नई मुसीबतें लेकर आए। फिर भी हम बादये गफलत में रहें और एशो-इशरत में अय्यामे-जवानी गुजार देते। यह खयाल करके-

जरूने हुब्बे वतन का मजा, शबाब में है,
लहू में फिर यह रवानी रहे, रहे न रहे।

जो भी किया, भला किया, आज हम नाकाम रहे, डाकू हैं। कामयाब होते मुहिब्बे वतन के पाक लकब से पुकारे जाते और जो भी आज हम पर झूठी गवाहियां दे गए, हमारे नाम के जयकारे लगाते-

बहे बहरे फना में जल्द, यारब लाश बिस्मिल की,
कि भूखी मछलियां हैं, जौहरे शमशीरे कातिल की।

आह, क्या ऐसे दौर की जिंदगी प्यारी ख्याल की जा सकती है। जबकि हमारे ही गिरोह-सियासी में खलफिशार मचा है। कोई तबलीक का दिलदादा है, तो कोई शुद्धि पर मर मिटने को बाइसेनिजात समझ रहा है। मुझे तो रह-रहकर इन दिमागों और अक्लों पर तरस आ रहा है जो बेहतरीन दिमाग हैं और माहरीने सियासत हैं। काश कि वह आजादिए मिस्र की जद्दोजहद एहरारान मिस्र के कारनामे और बर्तानवी सियासी चालें स्टडी कर लें और फिर हमारे हिंदुस्तान की मौजूदा हालत से मुकाबिला व मवाजना करें, क्या ठीक वही हाल इस वक्त नहीं है। गवर्नमेंट के खुफिया एजेंट प्रोपेगेंडा मजहबी बुनियाद पर फैला रहे हैं। इन लोगों का मकसद मजहब की हिफाजत या तरक्की नहीं है बल्कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है। मेरे पास वक्त नहीं और न मौका है कि सब कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देता जो मुझे अय्यामे फरारी में और उसके बाद मालूम हुआ है। यहां तक मुझे मालूम है कि मौलवी नियामतुल्ला कादियानी कौन था कि काबुल में गंगसार किया गया था। वह ब्रिटिश एजेंट था जिसके पास हमारे करमफरमा खान बहादुर तसद्दुक हुसैन साहब, डिप्टी सुपरिंटेंडेंट सी आई डी गवर्नमेंट आफ इंडिया पैगाम लेकर गए थे मगर बेदारमकज हुकूमत काबुल ने इलाज जल्द कर दिया और मर्ज को फैलने न दिया। मैं अपने हिंदुओं और मुसलमान भाइयों को बता देना चाहता हूं कि सब ढोंग

गवर्नमेंट के खुफिया एजेंट प्रोपेगेंडा मजहबी बुनियाद पर फैला रहे हैं। इन लोगों का मकसद मजहब की हिफाजत या तरक्की नहीं है बल्कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है। मेरे पास वक्त नहीं और न मौका है कि सब कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देता जो मुझे अय्यामे फरारी में और उसके बाद मालूम हुआ है।

है जो सीआईडी के खुफिया खजाने के रुपये से रचा गया है। मैं मर रहा हूं और वतन पर मर रहा हूं। मेरा फर्ज है कि हर नेकोबद बात भाइयों तक पहुंचा दूं। मानना न मानना उनका काम है। मुल्क के बड़े-बड़े लोग इससे बचे हुए नहीं हैं। पस अवाम को आंखें खोलकर इत्तबा करना चाहिए। भाइयों, तुम्हारी खानाजंगी तुम्हारी आपस

की फूट, तुम दोनों में से किसी के भी सुदमंद साबित न होगी। यह गैरमुमकिन है कि सात करोड़ मुसलमान शुद्ध हो जाएं और वैसे ही यह भी महमल सी बात है कि 22 करोड़ हिंदू मुसलमान बना लिए जाएं। मगर हां यह आसान है और बिलकुल आसान है कि यह सब मिलकर गुलामी का तौक गले में डाल लें। ऐ वह कौम जिसका कोई कौमी झंडा नहीं-ऐ वह कि तेरा वतन मेरा वतन नहीं-ऐ वह कि दूसरों की तरफ हाथ फैलाए हुए रहम की दरख्वास्त पर नजर रखने वाली बेकस कौम तेरी अपनी गलतियों का यही नतीजा है कि आज तू गुलाम है और फिर वही गलतियां कर रहो है कि आने वाली नस्लों के लिए धब्बा गुलामी का छोड़ जाएगी कि जो भी सरजमीने हिंद पर कदम रखेगा, गुलामी में रखेगा और गुलाम बनाएगा। ऐ खुदाबंदे कुद्दस क्या कोई ऐसा सबेरा नहीं आएगा कि जिस सुबह को तेरा आफताब आजाद हिंदुस्तान पर चमके और फिजाए हिंद आजादी के नारों से गूंज उठे। कांग्रसवाले हों कि सौराजिस्ट, तबलीगवाले हों कि शुद्धीवाले, कम्युनिस्ट हों कि रिवोल्यूशनरी, अकाली हों कि बंगाली, मेरा पयाम हर फरजदेवतन को

अगर वह मजहब का कायल नहीं तो उसके जमीर को और जिसको भी वह मानता हो, अपील करता हूं कि हम काकोरी केस के मर जाने वाले नौजवानों पर तरस खाओ। और फिर हिंदुस्तान को सन 20 और 21 वाला हिंदुस्तान बना दो। फिर अहमदाबाद कांग्रेस जैसा इत्तिहाद इत्तिफाक का नजारा सामने हो।

पहुंचे। मैं हर शख्स को उसकी इज्जत व मजहब का वास्ता देता हूं। अगर वह मजहब का कायल नहीं तो उसके जमीर को और जिसको भी वह मानता हो, अपील करता हूं कि हम काकोरी केस के मर जाने वाले नौजवानों पर तरस खाओ। और फिर हिंदुस्तान को सन 20 और 21 वाला हिंदुस्तान बना दो। फिर अहमदाबाद कांग्रेस जैसा इत्तिहाद इत्तिफाक का नजारा सामने हो। बल्कि उससे बढ़कर हो और मुकम्मल आजादी का जल्द से जल्द ऐलान करके इन गोरे आकाओं को हटा दो कि ये अब केंचुली उतार चुके हैं और अब वह किसी मंत्र से बस में न होंगे-तबलीक व शुद्धीवालों खुदारा आंखें खोलो, कहां थे और कहां पहुंच गए, अपनी-अपनी शान खत्म करो, सोचो तो मजहब में जबरदस्ती इख्तिलाफे राय पर जंग, एक काम मनुकम्मल छोड़कर दूसरी तरफ रुजू हो गए। और कौन ऐसा हिंदू या मुसलमान है जो मजहबी आजादी इतनी रखता है कि जितना उसका हक है क्या गुलाम कौम का कोई मजहब होता है? तुम अपने मजहब का सुधार क्या कर सकते हो? तुम खुदा की इबादत पुरसुकून तरीके पर करो। तुम ईश्वर का ध्यान खामोशी करो और दोनों मिलकर इस सफेद भूत को मंत्र से जंत्र से उतार भगाओ। इसी की यह सारी कार्यवाही है। जब यह भूत उतर जाएगा, हमारी आंखें खुल जाएंगी। आओ हमारी भी सुनो, पहले हिंदुस्तान को आजाद करो, फिर कुछ और सोचना, खुदा ने जिसके लिए जो रास्ता मुंतखिब कर दिया है, वह उसी पर रहेगा। तुम किसी को भी नहीं हटा सकते। आपस में मिल-जुलकर रहो और मुत्तहिद हो जाओ, नहीं तो सारे हिंदुस्तान की बदख्तों का वार तुम्हारी गर्दन पर है और गुलामी का बाइस तुम हो।

संदेश से साभार

रामकृष्ण और विवेकानंद

रामकृष्ण परमहंस (1834-1886) एक संत चरित्र व्यक्ति थे जो त्याग-ध्यान-भक्ति की पारंपरिक विधियों से धार्मिक मुक्ति पाने में विश्वास रखते थे। धार्मिक सत्य की खोज तथा स्वयं में ईश्वर का अनुभव करने के उद्देश्य से वे मुसलिम तथा ईसाई दरवेशों के साथ भी रहे। उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि ईश्वर तक पहुंचने तथा मुक्ति पाने के कई मार्ग हैं और यह कि मनुष्य की सेवा ईश्वर की सेवा है, क्योंकि मनुष्य ईश्वर का ही मूर्तिमान रूप है।

उनके धार्मिक संदेशों को उनके महान शिष्य स्वामी विवेकानंद ने प्रचारित किया तथा उनको समकालीन भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने का प्रयास किया। विवेकानंद का सबसे अधिक जोर सामाजिक क्रिया पर था। उन्होंने कहा कि ज्ञान अगर वास्तविक दुनिया में जिसमें हम रहते हैं, कर्म से हीन हो तो व्यर्थ है। अपने गुरु की तरह उन्होंने भी सभी धर्मों की बुनियाद एकता की घोषणा की तथा धार्मिक बातों में संकुचित दृष्टिकोण की निंदा की। जैसा कि 1898 में उन्होंने लिखा था-हमारी अपनी मातृभूमि के लिए दो महान धर्मों- हिंदुत्व तथा इस्लाम का संयोग ही एकमात्र आशा है। साथ ही वे भारतीय दर्शन परंपरा के श्रेष्ठकर दृष्टिकोण में भई विश्वास रखते थे। वे खुद वेदांत के अनुयायी थे जिसे उन्होंने एक पूर्णतः बुधिसंगत प्रणाली बतलाया।

विवेकानंद ने भारतीयों की आलोचना की कि बाकी दुनिया से कटकर वे जड़ तथा मृतप्राय हो गए हैं। उन्होंने लिखा -दुनिया के सभी दूसरे राष्ट्रों से हमारा अलगाव ही हमारे पतन का कारण है और शेष दुनिया की धारा में समा जाना ही इसका एकमात्र समाधान है। गति जीवन का चिन्ह है।

विवेकानंद ने जाति प्रथा की तथा कर्मकांड, पूजा पाठ और अंधविश्वास पर हिंदू धर्म के तत्कालीन जोर देने की निंदा की तथा जनता से स्वाधीनता, समानता तथा स्वतंत्र चिंतन की भावना अपनाने के आग्रह किया। इस बारे में उनकी तीखी टिप्पणी इस प्रकार थी- हमारे सामने खतरा यह है कि हमारा धर्म रसोईघर में न बंद हो जाए। हम अर्थात हममें से अधिकांश न वेदांती हैं न पौराणिक और न ही तांत्रिक। हम केवल हमें मत छुओ के समर्थक हैं। हमारा ईश्वर भोजन के बर्तन में है और हमारा धर्म यह है कि हम पवित्र हैं, हमें छूना मत। अगर यही सब कुछ एक शताब्दी और चलता रहा तो हममें से हर एक व्यक्ति पागलखाने में होगा।

विचारों की स्वतंत्रता के बारे में उन्होंने कहा- विचार और कर्म की स्वतंत्रता जीवन, विकास तथा कल्याण की अकेली शर्त है। जहां यह न हो वहां मनुष्य, जाति तथा राष्ट्र सभी पतन के शिकार होते हैं।

अपने गुरु की तरह विवेकानंद भी एक महान मानवतावादी थे। देश की साधारण जनता की गरीबी बदहाली और पीड़ा से दुखी होकर उन्होंने लिखा है- मैं एक ही ईश्वर को मानता हूं जो सभी आत्माओं की एक आत्मा है और सबसे ऊपर है। मेरा ईश्वर दुखी मानव है, मेरा ईश्वर पीड़ित मानव है, मेरा ईश्वर हर जाति का निर्धन मनुष्य है।

शिक्षित भारतीयों से वे कहते हैं- जब तक लाखों लाख लोग भूख तथा अज्ञान से ग्रस्त हैं, मैं हर उस व्यक्ति को देशद्रोही कहूंगा जो उसके खर्च पर शिक्षा पाकर भी उन पर कोई ध्यान नहीं देता। मानवतावादी राहत कार्य तथा समाज कार्य को जारी रखने के लिए 1896 में विवेकानंद ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की।

गांधी जी के नाम खुली चिट्ठी

परम कृपालु महात्मा जी,

आजकल की ताजा खबरों से मालुम होता है कि समझौते की बातचीत की सफलता के बाद आपने क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं को फिलहाल अपना आंदोलन बंद कर देने और आपको अपने अहिंसावाद को आजमा देखने का आखिरी मौका देने के लिए कई प्रकट प्रार्थनाएं की हैं। वस्तुतः किसी आंदोलन को बंद करना केवल आदर्श या भावना से होने वाला काम नहीं है। भिन्न-भिन्न अवसरों की आवश्यकताओं का विचार ही अगुआओं को उनकी युद्ध नीति बदलने के लिए विवश करता है।

माना कि सुलह की बातचीत के दरम्यान,

संपूर्ण स्वतंत्रता जब तक न मिले, तब तक बिना विराम के लड़ते रहने के लिए महासभा लाहौर के प्रस्ताव से बंधी हुई है। उस प्रस्ताव को देखते हुए मौजूदा सुलह और समझौता सिर्फ कामचलाऊ युद्ध विराम है, जिसका अर्थ यही होता है कि आने वाली लड़ाई के लिए अधिक बड़े पैमाने पर अधिक अच्छी सेना तैयार करने के लिए यह थोड़ा विश्राम है।

आपने इस ओर एक क्षण के लिए भी न तो दुर्लक्ष्य किया, न इसे छिपा ही रखा कि यह समझौता अंतिम समझौता न होगा। मैं मानता हूं कि सब बुद्धिमान लोग बिल्कुल आसानी के साथ यह समझ गए होंगे कि आपके द्वारा प्राप्त तमाम सुधारों का अमल होने लगने पर भी कोई यह न मानेगा कि हम मंजिले-मकसूद पर पहुंच गए हैं। संपूर्ण स्वतंत्रता जब तक न मिले, तब तक बिना विराम के लड़ते रहने के लिए महासभा लाहौर के प्रस्ताव से बंधी हुई है। उस प्रस्ताव को देखते हुए मौजूदा सुलह और समझौता सिर्फ कामचलाऊ युद्ध विराम है, जिसका अर्थ यही होता है कि आने वाली लड़ाई के लिए अधिक बड़े पैमाने पर अधिक अच्छी सेना तैयार करने के लिए यह थोड़ा विश्राम है। इस विचार के साथ ही समझौते और युद्ध विराम की शक्यता की कल्पना की जा सकती है और उसका औचित्य सिद्ध हो सकता है। किसी भी प्रकार का युद्ध विराम करने का उचित अवसर और उसकी शर्तें ठहराने का काम तो उस आंदोलन के अगुआओं का है। लाहौर वाले प्रस्ताव के रहते हुए भी आपने फिलहाल सक्रिय आंदोलन बंद रखना उचित समझा है, तो भी वह प्रस्ताव तो कायम ही है। इसी तरह हिंदुस्तानी सोशियलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के नाम से ही साफ पता चलता है कि क्रांतिवादियों का आदर्श समाज-सत्ता वादी प्रजातंत्र की स्थापना करना है। यह प्रजातंत्र मध्य का विश्राम नहीं है। उनका ध्येय प्राप्त न हो और आदर्श सिद्ध न हो, तब तक वे लड़ाई जारी रखने के लिए बंधे हुए हैं। परंतु बदलती हुई परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार वे अपनी युद्ध नीति बदलने को तैयार अवश्य होंगे। क्रांतिकारी युद्ध जुदा-जुदा मौकों पर जुदा-जुदा रूप धारण करता है। कभी वह प्रकट होता है, कभी गुप्त, कभी केवल आंदोलन रूप होता है और कभी जीवन-मरण का भयानक संग्राम बन जाता है। ऐसी दशा में क्रांतिवादियों के सामने अपना आंदोलन बंद करने के लिए विशेष कारण होने चाहिए। परंतु आपने ऐसा कोई निश्चित विचार प्रकट नहीं किया। निरी भावपूर्ण अपीलों का क्रांतिवादी युद्ध में कोई विशेष महत्व नहीं होता, हो नहीं सकता।

आपके समझौते के बाद आपने अपना आंदोलन बंद किया है और फलस्वरूप आपके सब कैदी रिहा हुए हैं। पर क्रांतिकारी कैदियों का क्या? 1915ई. से जेलों में हुए गदर-पक्ष के बीसों कैदी सजा की मियाद पूरी हो जाने पर भी अब तक जेलों में सड़ रहे हैं। मार्शल लॉ के बीसों कैदी आज भी जिंदा कब्रों में दफनाए पड़े हैं। यही हाल बब्बर अकाली कैदियों का है। देवगढ़, काकोरी, मछुआ-बाजार और लाहौर षडयंत्र के कैदी अब तक जेल की चहारदीवारी में बंद पड़े हुए बहुतेरे कैदियों में से कुछ हैं। लाहौर, दिल्ली, चटगांव, बंबई, कलकत्ता और अन्य जगहों में कोई आधी दर्जन से ज्यादा षडयंत्र के मामले चल रहे हैं। बहुसंख्यक क्रांतिवादी भागते फिरते हैं और उनमें कई तो स्त्रियां हैं। सचमुच आधी दर्जन से अधिक कैदी फांसी पर लटकने की राह देख रहे हैं। इन सबका क्या? लाहौर षडयंत्र केस के सजायाफ्ता तीन कैदी, जो सौभाग्य से मशहूर हो गए हैं और जिन्होंने जनता की बहुत अधिक सहानुभूति प्राप्त की है, वे कुछ क्रांतिवादी दल का एक बड़ा हिस्सा नहीं हैं। उनका भविष्य ही उस दल के सामने एकमात्र प्रश्न नहीं है। सच पूछा जाए तो उनकी सजा घटाने की अपेक्षा उनके फांसी पर चढ़ जाने से ही अधिक लाभ होने की आशा है।

यह सब होते हुए भी आप उन्हें अपना आंदोलन बंद करने की सलाह देते हैं। वे ऐसा क्यों करें? आपने कोई निश्चित वस्तु की ओर निर्देश नहीं किया है। ऐसी दशा में आपकी प्रार्थनाओं का यही मतलब होता है कि आप इस आंदोलन को कुचल देने में नौकरशाही की मदद कर रहे हैं और आपकी विनती का अर्थ उनके दल को द्रोह, पलायन और विश्वासघात का उपदेश करना है। यदि ऐसी बात नहीं है, तो आपके लिए उत्तम तो यह था कि आप कुछ अग्रगण्य क्रांतिकारियों के पास जाकर उनसे सारे मामले के बारे में बातचीत कर लेते। अपना

मार्शल लॉ के बीसों कैदी आज भी जिंदा कब्रों में दफनाए पड़े हैं। यही हाल बब्बर अकाली कैदियों का है। देवगढ़, काकोरी, मछुआ-बाजार और लाहौर षडयंत्र के कैदी अब तक जेल की चहारदीवारी में बंद पड़े हुए बहुतेरे कैदियों में से कुछ हैं। लाहौर, दिल्ली, चटगांव, बंबई, कलकत्ता और अन्य जगहों में कोई आधी दर्जन से ज्यादा षडयंत्र के मामले चल रहे हैं।

आंदोलन बंद करने के बारे में पहले आपको उनकी बुद्धि की प्रतीति करा लेने का प्रयत्न कनरा चाहिए था। मैं नहीं मानता कि आप भी इस प्रचलित पुरानी कल्पना में विश्वास रखते हैं कि क्रांतिकारी बुद्धि हीन हैं, विनाश और संहार में आनंद मानने वाले हैं। मैं आपको कहता हूं कि वस्तुस्थिति ठीक इसकी उलटी है, वे सदैव कोई भी काम

करने से पहले उ सका खूब सूक्ष्म विचार कर लेते हैं और इस प्रकार वे जो जिम्मेदारी अपने माथे लेते हैं, उसका उन्हें पूरा-पूरा ख्याल होता है। महत्व का मानते हैं हालांकि मौजूदा हालत में अपने कार्यक्रम के संहारक अंग पर डटे रहने के अलावा और कोई चारा उनके लिए नहीं है।

उनके प्रति सरकार की मौजूदा नीति यह है कि लोगों की ओर से उन्हें अपने आंदोलन के लिए जो सहानुभूति और सहायता मिली है, उससे वंचित करके उन्हें कुचल डाला जाए। अकेले पड़ जाने पर उनका शिकार आसानी से किया जा सकता है। ऐसी दशा में उनके दल में बुद्धि-भेद और शिथिलता पैदा करने वाली कोई भी भावपूर्ण अपील एकदम बुद्धिमानी से रहित और क्रांतिकारियों को कुचल डालने में सरकारी की सीधी मदद करने वाली होगी।

इसलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि या तो आप कुछ क्रांतिकारी नेताओं से बातचीत कीजिए-उनमें से कई जेलों में हैं- और उनके साथ सुलह कीजिए या ये सब प्रार्थनाएं बंद रखिए। कृपा कर हित की दृष्टि से इन दो में से कोई एक रास्ता चुन लीजिए और सच्चे दिल से उस पर चलिए। अगर आप उनकी मदद न कर सकें, तो मेहरबानी करके उन पर रहम करें। उन्हें अलग रहने दें। वे अपनी हिफाजत आप अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। वे जानते हैं कि भावी राजनैतिक युद्ध में सर्वोपरि स्थान क्रांतिकारी पक्ष को ही मिलने वाला है। लोकसमूह उनके आस-पास इकट्ठा हो रहे हैं और वह दिन दूर नहीं है जब ये जनसमूह को अपने झंडे तले, समाजसत्ता प्रजातंत्र के उम्दा और भव्य आदर्श की ओर ले जाते होंगे।

अगर आप उनकी मदद न कर सकें, तो मेहरबानी करके उन पर रहम करें। उन्हें अलग रहने दें। वे अपनी हिफाजत आप अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। वे जानते हैं कि भावी राजनैतिक युद्ध में सर्वोपरि स्थान क्रांतिकारी पक्ष को ही मिलने वाला है। लोकसमूह उनके आस-पास इकट्ठा हो रहे हैं और वह दिन दूर नहीं है जब ये जनसमूह को अपने झंडे तले, समाजसत्ता प्रजातंत्र के उम्दा और भव्य आदर्श की ओर ले जाते होंगे।

अथवा अगर आप सचमुच ही उनकी सहायता करना चाहते हों, तो उनका दृष्टिकोण समझ लेने के लिए उनके साथ बातचीत करके इस सवाल की पूरी तफसीलवार चर्चा कर लीजिए। आशा है, आप कृपा करके उक्त प्रार्थना पर विचार करेंगे और अपने विचार सर्वसाधारण के सामने प्रकट करेंगे।

आपका अनेकों में से एक भगत सिंह

स्वाधीनता संग्राम से क्या मिला ?

स्वाधीनता के संघर्ष ने केवल औपनिवेशिक शासन को ही नहीं उखाड़ फेंका था, आजाद हिंदुस्तान की एक तस्वीर भी सामने रखी थी। यह तस्वीर एक लोकतांत्रिक नागरिक स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्ष भारत की थी। यह तस्वीर एक स्वाधीन आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक समानता और राजनीतिक रूप से जागरूक और सक्रिय जनता पर आधारित भारत की थी। यह तस्वीर थी एक ऐसे भारत की जो अपने पड़ोसियों और शेष विश्व के साथ शांतिपूर्वक रहता हो और जिसका आधार एक स्वतंत्र विदेश नीति हो।

इस तस्वीर को मूर्त रूप देने का पहला प्रयास जवाहर लाल नेहरू और भीमराव अंबेडकर के मार्ग दर्शन में संविधान सभा ने स्वतंत्र भारत का नया संविधान बनाकर किया। 26 जनवरी, 1950 को लागू होने वाले इस संविधान ने कुछ बुनियादी सिद्धांत और मूल्य सामने रखे। इसके अनुसार भारत एक धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक गणराज्य होगा जिसमें बालिग मताधिकार (सभी बालिग स्त्री-पुरुषों के लिए मत देने का अधिकार) पर आधारित एक संसदीय प्रणाली होगी। यह एक संघीय व्यवस्था होगी जिसमें संघ सरकार और संघ बनाने वाले राज्यों के अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से अलग-अलग होंगे। संविधान ने सभी भारतीय नागरिकों को कुछ मूलभूत अधिकार दिए जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संपत्ति जुटाने और उसका उपयोग करने की स्वतंत्रता आदि।

संविधान ने सभी नागरिकों को कानून के सामने बराबरी तथा सरकारी रोजगार के अवसर की समानता की जमानत दी। यह निश्चित हुआ कि राज्य धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ कोई भेदभाव नहीं करेगा।

संविधान ने सभी नागरिकों को कानून के सामने बराबरी तथा सरकारी रोजगार के अवसर की समानता की जमानत दी। यह निश्चित हुआ कि राज्य धर्म, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी नागरिक के खिलाफ कोई भेदभाव नहीं करेगा। अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया गया तथा किसी भी रूप में इसके व्यवहार पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

सभी भारतीयों को स्वतंत्रता पूर्वक किसी भी धर्म को मानने, उसके अनुसार कार्य करने तथा उसका प्रचार करने का अधिकार दिया गया। साथ ही पूरी तरह राज्य के खर्च पर चलने वाले किसी भी शैक्षिक संस्थान में किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा देने पर रोक लगा दी गई। संविधान में कुछ राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत भी निश्चित किए गए जिन्हें किसी अदालत द्वारा तो लागू नहीं कराया जा सकता मगर जो कानून बनाने में राज्य का मार्ग दर्शन करेंगे। इसमें ये सिद्धांत शामिल हैं-राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित एक सामाजिक व्यवस्था की स्थापना को प्रोत्साहन, धन और उत्पादन के साधनों का कुछ हाथों में केंद्रीकरण रोकना, स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान काम का समान वेतन, ग्राम पंचायतों की स्थापना, काम और शिक्षा का अधिकार, बेरोजगारी, बुढ़ापे और बीमारी में सार्वजनिक सहायता, पूरे देश में एक समान पारिवारिक कानून तथा जनता के कमजोर वर्गों खासकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को प्रोत्साहन।

अपनी क्षमताओं पर भरोसा करके तथा मन में सफलता की आकांक्षा लेकर अब भारतीय जनता अपने देश का कायाकल्प करने तथा एक न्यायप्रिय, श्रेष्ठ समाज और एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक व समतावादी भारत का निर्माण करने के काम में जुट गई।

आत्म-निर्णय और भारतवर्ष

इस महायुद्ध से एक बड़े भारी सिद्धांत का प्रभाव स्वीकार किया जाए लगा है। यह सिद्धांत है आत्म-निर्णय का। इसका राजनीतिक अर्थ यह है कि संसार के प्रत्येक देश को यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह जिस प्रकार शासन चाहे उसी प्रकार का अपने यहां रखे। शासन प्रणाली का चुनना अभी तक शासकों के हाथ में था, परंतु अब यह मान लिया गया है कि अपने लिए चुनाव शासितों का हक है। यह बात इस युद्ध से सबसे पहले रूस में उदय हुई। जब वहां क्रांति का जोर बढ़ा और जार महोदय विदा किए गए, तब रूसी जनता के सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि लड़ाई जारी रखी जाए या नहीं। एक छोटा सा दल जिसके नेता करेंसकी थे, इस पक्ष में थे कि लड़ाई छिड़ी रहे। दूसरा दल जो बड़ा था, कहता था कि उसकी अब आवश्यकता ही क्या है। हमें किसी की धन-धरती लेना ही नहीं है, हमें किसी जार या बादशाह की महत्वाकांक्षा पूरी करनी ही नहीं है, फिर व्यर्थ अधिक काल तक खून में हाथ क्यों सने और धन-जन का नाश क्यों करें। दूसरे दल की जीत रही। करेंसकी साहब को रूस छोड़कर भाग जाना पड़ा। रूस ने लड़ाई से हाथ खींच लिया। रूस का आत्म-निर्णय के लिए सेना का यह दूसरा कदम था। पहला था जार के शासन को दूर कर देना। यह कदम आगे ही बढ़ता गया। जब देश की व्यवस्था का प्रश्न सामने आया, तब यह तय हो गया कि रूस का जो खंड जिस प्रकार का शासन चाहे, उसी प्रकार का शासन उसके निवासी अपने लिए चुन लें। रूस में इस निर्णय का दूसरा काम भी बहुत हुआ और उनकी यह बात इतनी आकर्षक सिद्ध हुई कि उसे रूस के बाहर के लोगों ने भी बहुत पसंद किया और यह समझा कि इस समय यूरोप के देशों में भूमि के टुकड़ों के लिए जो ले-दे हो रही है, वह यदि किसी प्रकार निपट सकती है तो केवल इसी प्रकार। इसलिए इस सिद्धांत पर अमेरिका ने तुरंत अपनी मोहर लगा दी। इंग्लैंड की ओर से भी मि.लायड जार्ज ने इस बात को बहुत पसंद किया और न्याय और स्वाधीनता की दुहाइयां देते हुए फरमाया कि हम काले और गोरे, अफ्रीकी और यूरोपीय सभी देशों के लिए इस सिद्धांत को लागू समझेंगे और जब युद्ध समाप्त होगा, तब उसी के अनुसार जीते हुए देश या झगड़े में पड़े हुए देशों का निपटारा करेंगे।

एक छोटा सा दल जिसके नेता करेंसकी थे, इस पक्ष में थे कि लड़ाई छिड़ी रहे। दूसरा दल जो बड़ा था, कहता था कि उसकी अब आवश्यकता ही क्या है। हमें किसी की धन-धरती लेना ही नहीं है, हमें किसी जार या बादशाह की महत्वाकांक्षा पूरी करनी ही नहीं है, फिर व्यर्थ अधिक काल तक खून में हाथ क्यों सने और धन-जन का नाश क्यों करें। दूसरे दल की जीत रही। करेंसकी साहब को रूस छोड़कर भाग जाना पड़ा।

इंग्लैंड के अन्य सज्जनों और फ्रांस व इटली ने भी इस सिद्धांत से अपनी सहमति प्रकट की। हुआ यह सब कुछ परंतु अफ्रीका के उपनिवेशों, जुलूलैंड के हबशियों और पूर्वी अफ्रीका के असभ्य फकीरों के उद्धार की बात के साथ कभी भारतवर्ष की बात नहीं आने पायी। रूस के ट्राटस्की ने एक बार किसी अंग्रेज को ताना भी दिया था कि तुम्हारे दांत खाने के और, दिखाने के और होते हैं। और जर्मन भी उस समय उस सिद्धांत पर बहुत डींग मारने वालों के सामने केवल शरारत से, भारत वर्ष, आयरलैंड और मिस्र का नाम रखा करते थे, परंतु भले आदमियों ने इन बातों पर कान देना भी उचित नहीं समझा। जब लड़ाई समाप्त हुई तब संसार ने बड़ी उत्सुकता के साथ देखना चाहा कि इस बात के अनुसार, जिसके लिए जमीन और आसमान के कुलावे बहुत दिनों से एक किए जा रहे थे। अब क्या किया जाता है। दुनिया को अब गहरी निराशा हुई और उसे फिर अपने इस पहले विश्वास पर ही चला जाना पड़ा है कि राजनीतिक क्षेत्र में ईमानदारी और सच्चाई का जमाना न पहले कभी था और न शायद आगे भी कभी होगा। प्रो. विल्सन बड़ी धूम से अमेरिका से पधारे थे और इसमें संदेह नहीं कि उनकी बातें इतनी मीठी, इतनी साफ और इतनी बेलाग होती हैं कि मंत्र मुग्ध सूर्य की भांति दुनिया भर के आदमियों को उनकी बातों के सामने सिर हिलाना ही पड़ जाता है। परंतु या तो प्रो.विल्सन की बातें आगे बढ़ ही नहीं पातीं। आए थे वे आत्म-निर्णय का शंख बजाने और दुनिया भर के राष्ट्रों की पंचायत स्थापित करने तथा न्याय के साथ संधि कराने, परंतु आत्म-निर्णय के नाम पर तो यह हुआ है कि जो देश जीत गए हैं उनका बड़ी ही निर्दयता के साथ हिंसक विनाश हो रहा है, मेंडेटरी शक्ति के रूप में साम्राज्यवाद को पैर पसारने का पूरा अवसर देकर स्वाधीनता का गला घोटा जा रहा है और स्वार्थ लोलुपों को अनुन्नत देशों के व्यापार और हुकूमत का मजा मारने का अवसर न्याय और सत्यता के नाम पर दिया जा रहा है।

इंग्लैंड के अन्य सज्जनों और फ्रांस व इटली ने भी इस सिद्धांत से अपनी सहमति प्रकट की। हुआ यह सब कुछ परंतु अफ्रीका के उपनिवेशों, जुलूलैंड के हबशियों और पूर्वी अफ्रीका के असभ्य फकीरों के उद्धार की बात के साथ कभी भारतवर्ष की बात नहीं आने पायी। रूस के ट्राटस्की ने एक बार किसी अंग्रेज को ताना भी दिया था कि तुम्हारे दांत खाने के और, दिखाने के और होते हैं।

राष्ट्रों की पंचायत

संसार के राष्ट्रों की पंचायत और उस पंचायत में कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि तक शामिल रहेंगे परंतु उसमें भारतवर्ष, मिस्र आदि को कोई स्थान नहीं मिलेगा। न्याय की संधि का अभी पूरा नमूना पेश नहीं किया जा सकता। क्योंकि संधि पत्र पर हस्ताक्षर होते समय तक न मालूम क्या हो, क्या न हो जाए। परंतु इतना इस समय भी कहा जा सकता है कि संधि चाहे जिन प्रस्तावों से भरी हो, उसमें न्याय की बड़ी कमी अवश्य है। शासक मिस्टर क्रेकनशी जो संधि कांफ्रेंस के प्रेसीडेंट हैं, जर्मनी के सर्वनाश

पर उतारू हैं। उन्हीं की कृपा से जर्मनी के चारों ओर ऐसा घेरा पड़ा है कि खुराक की तंगी से जर्मनी में हाहाकार मच गया और अब वहां क्रांति का पैर आ पहुंचा है। उन्हीं की कृपा से जर्मनी की सार वैली की कोयले की खानें जो बहुत ही मालदार चीजें हैं और राइन नदी का पश्चिमी तट, जिस पर 70

जापान भी अपनी घात में है। उसकी दृष्टि साइबेरिया के खंडों पर है। यदि इन राष्ट्रों को व्यक्ति की हैसियत दे दी जाए तो जो लाभ और स्वार्थ वे प्रकट कर रहे हैं उसे देखकर मोटी से मोटी बुद्धि का आदमी दातों तले उंगली दबाए बिना न रहेगा। इस लूटमार और न्याय तथा स्वाधीनता की हत्या के अवसर पर कौन इन उद्गारों का खयाल रखता है जो पहले मुंह से निकले थ।

लाख जर्मन बसते हैं और जिसके छिन जाने से जर्मनी के सदा के लिए पंख कट जाएंगे पर फ्रांस की लोभ भरी दृष्टि पड़ रही है और लक्षण ऐसे दिखते हैं कि ये भूखंड उसे मिल जाएंगे। मिस्टर क्रेकननशी ही आस्ट्रियन जर्मनी को जर्मन प्रजातंत्र से मिलने को रोक रहे हैं और वे पोलैंड और बोहीमिया के नए राज्यों की सीमा ऐसी बनवा रहे हैं कि वे दोनों सदा जर्मनी के विरुद्ध पड़ें और फ्रांस का बल बढ़ाते रहें। फ्रांस ही अकेले का यह सत्य नहीं है। इटली की भी नजर आस्ट्रिया के टुकड़ों पर है और इंगलैंड और उसके उपनिवेश जर्मनी में उपनिवेशों पर हाथ मारना चाहते हैं। जापान भी अपनी घात में है। उसकी दृष्टि साइबेरिया के खंडों पर है। यदि इन राष्ट्रों को व्यक्ति की हैसियत दे दी जाए तो जो लाभ और स्वार्थ वे प्रकट कर रहे हैं उसे देखकर मोटी से मोटी बुद्धि का आदमी दातों तले उंगली दबाए बिना न रहेगा। इस लूटमार और न्याय तथा स्वाधीनता की हत्या के अवसर पर कौन इन उद्गारों का खयाल रखता है जो पहले मुंह से निकले थ। अमेरिका ही अकेला ऐसा हो जिसको कोई विशेष लाभ नहीं हो रहा है। परंतु उसकी एक नहीं चलती और यूरोप वालों के संग-ढंग देखकर वह अपनी सीमा में जहां तक बनेगा, करेगा और उसके बाद अपने घर जा बैठेगा और उसे अस्त्र-शस्त्रों से और भी दृढ़ करेगा। इस अवस्था को देखकर वे लोग निराश होंगे जो समझ बैठे थे कि युद्ध के समय प्रकट किए गए आत्म-निर्णय के उद्गार के अनुसार अब काम होने लगेगा और फिर न झगड़े रहेंगे और न फसाद, चारों ओर चैन की वंशी बजेगी। जिन लोगों ने इस प्रकार की आशा बांध रखी थी वे सचमुच भोले हैं और यह आवश्यक है कि अंत में उन्हें निराश होना पड़ता। मालुम नहीं, कभी कोई ऐसा समय आएगा भी या नहीं कि सभी जगह शांत का राज्य हो, कहीं न लड़ाई हो और न टंटे, न्याय और स्वाधीनता का सुख सभी भोगें और कोई किसी पर छीना-झपटी न करे। परंतु इस प्रकार का दिन यदि आना भी है तो उस दिन के सूर्य के उदय होने में अभी बहुत विलंब है और वह उस समय तक तो कदापि प्रकट होता ही नहीं, जब तक कि संसार के कल्याण की अपेक्षा प्रत्येक राष्ट्र अपने कल्याण और वैभव का ही अधिक खयाल रखता है। परंतु आत्म-निर्णय के विषय में यह बात बिलकुल ठीक नहीं उतर रही। आत्म-निर्णय के लिए अधिक काल की भी आवश्यकता है और उसके अनुसार थोड़े काल में भी काम हो सकता है। आत्म निर्णय दूसरों के द्वारा देने योग्य पीड़ा नहीं है। जो ऐसा समझते हैं वे केवल गलती ही नहीं करते किंतु उस सिद्धांत की हत्या तक करते हैं। यदि किसी देश के निवासी निश्चय कर लें कि हमें इसी प्रकार की शासन प्रणाली चाहिए दूसरे प्रकार की शासन प्रणाली हमारे लिए अनावश्यक है तो इस युग में जबकि विज्ञान के बल से संसार सिमट कर एक बुहत ही छोटी चीज रह गया है और भावों ने भी उन्नति कर ली है कि स्वाधीन होना या न्याय चाहना अब पाप नहीं समझा जाता, संसार की कोई भी बाहरी और पाशविक शक्ति उसे अपनी इच्छा के अनुसार विकास करने से रोक नहीं सकती। यद्यपि भारत वर्ष के आत्म निर्णय के सिद्धांत से लोभ-लाभ उठाने की कोई मांग नहीं आई है परंतु इस बात से देशभक्तों में निराशा का तनिक भी संचार न होना चाहिए। क्योंकि यह सिद्धांत हाथ पसार कर पाने की शिक्षा नहीं देता, यह तो कहता है कि पाना तो तुम्हारा हक है, तुम लेने के लिए तो तैयर हो। जब भारत के विषय में आत्म निर्णय की चर्चा उठाई गई है तब एक बात यहां पर कह देना आवश्यक है। कुछ कुछ अंग्रेजी लेखकों ने इस सिद्धांत का बड़ा मजाक उड़ाया है। वे कहते हैं कि यह बात कोई भी मतलब नहीं रखती। कुछ पागल रूसियों ने उनको जन्म दिया और अब संसार उसे ले उड़ा। यथार्थ में ये लोग इसलिए डरते हैं कि यदि इस सिद्धांत को मान लिया जाए (वह मान तो लिया गया है) तो भारत वर्ष, मिस्त्र, आयरलैंड ऐसे देश तो बिलकुल स्वतंत्रता मांगने लगेंगे। इसी डर के कारण ये लोग सूर्य पर धूल फेंकते हैं। परंतु उन्हें अपनी परछाई ही से डरना चाहिए। आज उनके जो दल हैं वे सब साम्राज्यों में अपना विकास चाहते हैं और इसीलिए वे इंगलैंड से प्रार्थना करते हैं कि तनिक अपनी बात की भी सुध करो, आत्म निर्णय के ऊपर तुम्हारी भी मोहर है। यदि ऐसा न होता तो इस सुध दिलाने की क्या आवश्यकता है। परंतु लेखक के मत से अब सुध दिलाने की आवश्यकता नहीं। काफी सुध दिला चुके। उधर आप बड़ी बातों की सुध दिलाते हैं, इधर आपके हाथ-पैर और मुंह पकड़ कर बांधने की तैयारी हो रही है। कितना अच्छा प्रतिफल है। अब तो आवश्यकता इस बात की है कि देश भर में आत्म निर्णय की धुन गूंज उठे और इसके बजाय कि हम इंगलैंड की न्याय, बुद्धिमत्ता

जब भारत के विषय में आत्म निर्णय की चर्चा उठाई गई है तब एक बात यहां पर कह देना आवश्यक है। कुछ कुछ अंग्रेजी लेखकों ने इस सिद्धांत का बड़ा मजाक उड़ाया है। वे कहते हैं कि यह बात कोई भी मतलब नहीं रखती। कुछ पागल रूसियों ने उनको जन्म दिया और अब संसार उसे ले उड़ा। यथार्थ में ये लोग इसलिए डरते हैं कि यदि इस सिद्धांत को मान लिया जाए (वह मान तो लिया गया है) तो भारत वर्ष, मिस्त्र, आयरलैंड ऐसे देश तो बिलकुल स्वतंत्रता मांगने लगेंगे।

पर विश्वास करना सीखें, क्योंकि इंगलैंड इतना बुद्धिमान है कि वह अमेरिका या आयरलैंड ही की सी हालत भारतवर्ष में कदापि न होने देगा।

साभार श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की लेखनी से साभार (मूल लेख साप्ताहिक उत्साह, झांसी 1921) □

रोहतक में बगावत

दिल्ली और सोनीपत के बीच जीटी रोड के साथ-साथ बसे गांवों ने 1856 की आजादी लहर का बड़ा स्वागत किया। लोक परंपरा के अनुसार इन बागी गांवों में लिबसपुर, कुंडली, भालगढ़, खामपुर, अलीपुर, हमीदपुर, सराय आदि प्रमुख हैं। कहते हैं कि लिबलपुर गांव. में उदमीराम नामक युवक ने 22 युवकों का एक दल बना लिया था। विद्रोह के दौरान उन्होंने बड़ी वीरता पूर्वक अंग्रेज सैनिकों के दिल्ली-पानीपत के बीच आने-जाने के रास्ते को रोक दिए इस प्रयास में कई अंग्रेज मारे गए।

शांति स्थापित हो जाने के बाद बागी गांवों को दंड देने के लिए एक दिन अंग्रेजी सेना ने लिबासपुर को आ घेरा। लड़ाई हुई और अनेक वीर मारे गए। गांव को जी भर कर लूटा गया। महिलाओं के जेवर तक छीन लिए गए। अनेक लोग गांव छोड़ कर भाग गए। पकड़े गए लोगों को जीटी रोड पर पत्थर के रोलर से कुचल दिया गया। वीर उदमीराम को सड़क पर पेड़ के साथ बांध दिया। उसके हाथों में लोहे की कीलें गाड़ दीं। वह देश भक्त 35 दिन तक भूखा प्यासा तड़प-तड़प कर शहीद हो गया। अंग्रेजों ने उसका शव भी उसके परिवार वालों को नहीं दिया। भाग गए लोग कई साल बाद शांति स्थापित होने पर ही वापस लौटे। परंतु उनकी सारी जमीन राठधना निवासी मुखबिर सीताराम के नाम चढ़ा दी गई थी। गांव के असली बाशिंदे भूमिहीन मुजारे बन कर रह गए।

लिबासपुर के पास ही मुरथल गांव है। 1857 के विद्रोह में इसकी भी अच्छी भूमिका रही है। कुंडली गांव ने भी स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। कुंडली निवासियों ने जीटी रोड को अंग्रेजों के लिए बंद कर दिया। आते-जाते अंग्रेजों को खत्म करना और उन्हें लूट लेना इन लोगों का आम काम था। अमन कायम कर लेने के बाद मुखबिरी के आधार पर अंग्रेजी सेना ने उन्हें दंड देने की खातिर एक दिन गांव को जा घेरा। गांव को खूब लूटा गया। पशुओं को अलीपुर ले जा कर नीलाम कर दिया गया। 11 व्यक्तियों को दंड दिया गया। आठ को एक साल की कैद और तीन व्यक्तियों को आजन्म काले पानी की सजा दी गई। ये तीनसुरता राम, जवाहरा तथा बाजा थे जो फिर कभी लौट कर गांव नहीं आ पाए। उधर, गांव की सारी जमीन सरकार ने तीन साल के लिए जब्त कर ली। परंतु यह जमीन कुंडली के मूल वासियों को कभी वापस नहीं लौटाई गई। आज भी सोनीपत के रहने वाले पंडित मामूल सिंह के वंशज इस जमीन के मालिक बताए जाते हैं। अंग्रेजी शासन में किसी कुंडली निवासी को सरकारी नौकरी पर रखे जाने की भी मनाही कर दी गई थी। खामपुर गांव भी विद्रोह के अपराध में जब्त कर लिया गया। इस गांव की भी सारी जमीन दिल्ली निवासी पंडित लछमन सिंह के पूर्वज को दे दी गई थी।

अमन कायम कर लेने के बाद मुखबिरी के आधार पर अंग्रेजी सेना ने उन्हें दंड देने की खातिर एक दिन गांव को जा घेरा। गांव को खूब लूटा गया। पशुओं को अलीपुर ले जा कर नीलाम कर दिया गया। 11 व्यक्तियों को दंड दिया गया। आठ को एक साल की कैद और तीन व्यक्तियों को आजन्म काले पानी की सजा दी गई। ये तीनसुरता राम, जवाहरा तथा बाजा थे जो फिर कभी लौट कर गांव नहीं आ पाए। उधर, गांव की सारी जमीन सरकार ने तीन साल के लिए जब्त कर ली।

अलीपुर गांव भी जीटी रोड पर बसा है। 1857 में अंग्रेजों को यहां के लोग सड़क से आने-जाने नहीं देते थे। वे ऐसा दिल्ली पर दबाव बनाने के लिए करते थे। इसीलिए उन्होंने उन्हें मिले सभी सरकारी कागजात फूंक दिए। बाजार को भी लूट लिया। यहां युद्ध में अनेक अंग्रेजों के मारे जाने की कथा प्रचलित है। शांति कायम हो जाने के बाद गांव को सजा देने के लिए एक दिन मिटकाफ, जिसे काना साहब कहकर पुकारा जाता था, सेना लेकर पहुंच गया। गांव को चारों तरफ से घेर लिया गया। अंग्रेज 70-75 व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लाल किले ले गए। उन सब को फांसी दे दी गई। लेकिन इनमें से मुहम्मद और भुरड़ नाम के दो व्यक्ति बच कर भगने में कामयाब हो गए। फांसी चढ़ाए जाने वालों में तुलसी राम और हंसराज के नाम आज भी लोगों की जबान पर हैं। इसी गांव के तोता राम ने अंग्रेजों की पिट्ठू सिख सेना के हाथों से बादली और समयपुर के आसपास के बारह गांवों के पशुओं को छुड़ाने में नेतृत्वकारी भूमिका निभाई थी। वे इस लड़ाई में शहीद हो गए थे। अलीपुर के इस एहसान को बादली, समयपुर वासी आज भी सम्मान के साथ याद करते हैं। हमीदपुर को भी गांव की जमीन जब्त करके विद्रोह करने की सजा दी गई। बगावत करने के कारण पीपलथला सराय को लूटा गया और जला दिया गया।

मुगल बादशाह ने 24 मई 1857 को तफजल हुसैन के नेतृत्व में रोहतक को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराने के लिए सेना भेज दी। उस समय रोहतक में जीडी लाक नामक अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर थे। बख्तावर सिंह तहसीलदार होते थे। उन्होंने बागी सेना का मुकाबला करने की कोशिश की। परंतु जनता के आक्रोश के सामने वे टिक नहीं पाए। वे अन्य अफसरों के साथ रोहतक छोड़ कर पानीपत की तरफ भाग निकले।

फांसी चढ़ाए जाने वालों में तुलसी राम और हंसराज के नाम आज भी लोगों की जबान पर हैं। इसी गांव के तोता राम ने अंग्रेजों की पिट्ठू सिख सेना के हाथों से बादली और समयपुर के आसपास के बारह गांवों के पशुओं को छुड़ाने में नेतृत्वकारी भूमिका निभाई थी। वे इस लड़ाई में शहीद हो गए थे। अलीपुर के इस एहसान को बादली, समयपुर वासी आज भी सम्मान के साथ याद करते हैं। हमीदपुर को भी गांव की जमीन जब्त करके विद्रोह करने की सजा दी गई।

सरकारी पत्राचार से पता चलता है कि बागियों ने दो तोपें और भारी धाड़ के साथ हमला कर दिया था। लोगों ने कचहरी और

सरकारी दफ्तरों को आग लगा दी। अंग्रेज अफसरों के घर फूंक डाले। सरकारी कागजात जला दिए। सामान्य लोग (किसान, मजदूर, दस्तकार आदि) भी अब इस स्वतंत्रता संग्राम में आ कूदे थे। शहर के जो महाजन और व्यवसायी उनका साथ नहीं दे रहे थे वे उनके क्रोध का निशाना बने। जेल पर हमला कर कैदियों को छुड़ा लिया गया। अब जिले के अन्य कस्बों में बी बगावत फैल गई थी। अंग्रेजी शासन खत्म हो गया। तफजल हुसैन की सेना अब दिल्ली वापस जाने लगी। उसने रास्ते में सांपला में भारी तादाद में अंग्रेजों को मार गिराया। मांडोठी के कस्टम बंगले जला डाले। उधर, बागियों ने महम और मदीने पर भी कब्जा कर लिया। यह बगावत आम जनता की बगावत बन गई थी। जिले से अंग्रेजी राज खत्म हो चुका था। एक अंग्रेज अधिकारी लिखते हैं कि उच्च वर्ग के लोगों से लेकर छोटे तबकों की, सबकी हमदर्दी बहादुर शाह जफर के सैनिकों और उनके बागी साथियों के साथ थी। सरकार के माफीदार भी बागियों के साथ हो गए।

इस बगावत में सभी जातियों से संबंधित जिले के 59 माफीदारों ने भाग लिया। पर जैसे ही बादशाह की फौज ने रोहतक छोड़ा, गोत्रों एवं खापों की आपसी लड़ाई के कारण राज्य व्यवस्था बिखर गई। अनेक गावों में अराजकता का बोलबाला हो चला। रिपोर्टों के मुताबिक जाट समुदाय के अनेक गोत्र आपस में ही भिड़ने लगे। गांव-गांव में चौपालों में मीटिंगें होती थीं। लड़ाई की खबर लोगों तक पहुंचाने के लिए गांव की सरहद पर नगाड़े रख दिए गए थे। वहां लोग भी तैनात थे। पेड़ पर बंधे नगाड़े पर ज्यों ही डंका बजता, एक गांव से दूसरे गांव में नगाड़े बजने शुरू हो जाते। लोग, तलवारें, लाठियां, भाले आदि लेकर कबीलाइयों की तरह लड़ाई के मैदान में कूद पड़ते।

जेल पर हमला कर कैदियों को छुड़ा लिया गया। अब जिले के अन्य कस्बों में बी बगावत फैल गई थी। अंग्रेजी शासन खत्म हो गया। तफजल हुसैन की सेना अब दिल्ली वापस जाने लगी। उसने रास्ते में सांपला में भारी तादाद में अंग्रेजों को मार गिराया। मांडोठी के कस्टम बंगले जला डाले। उधर, बागियों ने महम और मदीने पर भी कब्जा कर लिया। यह बगावत आम जनता की बगावत बन गई थी। जिले से अंग्रेजी राज खत्म हो चुका था।

उधर, बगावत भी जोरों पर थी और रोहतक जिला आजाद हो चुका था। कंपनी सरकार ने जीडी लाक को दोबारा रोहतक जा कर विद्रोह को दबाने का आदेश दिया। 24 मई को 60वीं भारतीय रेजिमेंट भी रोहतक के लिए रवाना कर दी गई। परंतु दस जून को इन सिपाहियों ने बगावत कर दी। अंग्रेजी सेना को बागियों के भारी हमले के कारण पीछे हटना पड़ा और बड़ा नुकसान उठाना पड़ा। जून और जुलाई के दौरान अंग्रेज कुछ नहीं कर पाए।

आठ अगस्त, 1957 को ब्रिगेडियर निकल्सन भारी सेना लेकर रोहतक पहुंचे। शहर पर बागियों का कब्जा था। अंग्रेजी सेना ने शहर पर हमला कर दिया। शहर में बागियों ने बारूद बनाने की एक बहुत बड़ी फैक्टरी लगा रखी थी। इसे अचानक आग लगने से भारी विस्फोट हो गया। इसमें लगभग 500 बागी जल कर मर गए। परंतु इसके बाद भी बागी अंग्रेजों के हमले का वीरता से मुकाबला करते रहे। उन्होंने युद्ध में अनेक अंग्रेज सैनिक मार गिराए। मजबूरन अंग्रेजों को अपने बचाव के लिए पीछे हटना पड़ा।

लेफ्टिनेंट मैकफरसन ने 12 अगस्त को चीफ कमिश्नर लाहौर को एक पत्र लिखा। उन्होंने लिखा कि बादशाह की सहायता के लिए रोहतक जिले के बागी दिल्ली गए थे। अब वे वापस रोहतक आ गए हैं और हिसार की तरफ बढ़ने की सोच रहे हैं। इस पर लाहौर के आर्मी मुख्यालय ने निर्णय लिया कि अमन-चैन कायम करने के लिए हांसी, हिसार और सिरसा में लाहौर से अंग्रेजी फौज भेजी जाए। कमिश्नर ने नवाब बहावपुर से भी इस काम के लिए 500 घुड़सवार मांगे। परंतु बहावलपुर रियासत में अब बगावत हो चुकी थी और नवाब सहायता भेजने की स्थिति में नहीं था।

अंग्रेजी सेना के दिल्ली कैंप में उन दिनों रोहतक की खबरें बराबर पहुंच रही थीं। खबर आई कि बागियों का नेता बाबर खान रांघड़ों के दल के साथ फिरोजपुर से दिल्ली आ रही कानवाई को लूटने की योजना बना रहा है। कंपनी सरकार ने तुरंत लेफ्टिनेंट हडसन को 233 सैनिकों, छह यूरोपीय अधिकारियों और 25 घुड़सवारों के साथ रोहतक भेज दिया। 15 अगस्त को यह सेना खरखौदा जा पहुंची। खरखौदा में जमा बागी सिपाहियों ने बिसारत अली के नेतृत्व में अंग्रेजी फौज का डट कर मुकाबला किया। हड़सन ने माना कि उनका मुकाबला इतना कठिन था मानो शैतानों से हो। परंतु अंग्रेजी सेना की शक्त बहुत बड़ी थी। फिर भी उन्हें बड़ा नुकसान उठाना पड़ा।

हड़सन को खरखौदा में यह सूचना मिल गई ती कि रोहतक बागी उसके खिलाफ योजना बना रहे हैं। वह तुरंत रोहतक पहुंचा। कचहरी के खुले अहाते में सेना को एकत्र कर लिया गया। उस समय बाबर खान अंग्रेजी सेना का मुकाबला करने के ळिए सैनिकों की खोज कर रहा था। 17 अगस्त को ही उसने 300 रांघड़ घुड़सवारों के साथ अंग्रेजी सेना पर हमला कर दिया। उसके पीछे लगभग 1000 पैदल सैनिक भी थे। उनके पास तलवारें व देसी बंदूकें थीं। दोनों फौजों के बीच घमासान युद्ध हुआ। बागियों ने बड़ी बहादुरी से अंग्रेजी फौज का सामना किया। परंतु अंग्रेजी तोपखाने से बचाव के लिए उन्हें खुले मैदान से हटना पड़ा। वे बणी में झाड़ियों के पीछे छिप कर लगातार लड़ते रहे। पर अंग्रेज भी बड़ा चालाक थे। वे पीछे हटने लगे। अंग्रेजी फौज को पीछे भागते देख बागी सिपाही उन पर हमला करने के लिए खुले मैदान में आ गए। बस क्या था, अंग्रेजी फौजों ने तोपखाने की मदद से जबरदस्त वार कर दिया। दोनों तरफ भारी नुकसान हुआ। बागी सैनिक फिर जंगल में जा छुपे। अंग्रेजी सेना में अब उन्हें ललकारने का साहस नहीं बचा था।

कुछ दिनों तक लड़ाई बंद रही। परंतु जल्दी ही अंग्रेजों की कुमुक आ गई। उन की बढ़ती फौजी ताकत को देख बागियों ने रोहतक छोड़ना ही ठीक समझा। उनमें से कुछ ने हांसी के नजदीक बसी गांव पहुंच कर मोचा जमा लिया। हड़सन ने जिले के मुख्य कस्बों पर हमला कर खरखौदा, सांपला, सोनीपत, महम और गोहाना पर कब्जा कर लिया। क्षेत्र का कार्यभार जींद के महाराजा और स्थानीय चौधरियों को सौंप कर वह खुद दिल्ली रवाना हो गया। हड़सन के जाते ही बागियों ने जींद की फौजों और स्थानीय अधिकारियों को मार भगाया।

सूरजभान (साभार- हरियाणा और आजादी की पहली जंग)

गांधी जी, धर्म निरपेक्षता और सांप्रदायिकता

गांधी जी बहुत भव्य व्यक्तित्व थे। वह अत्यधिक राजनीतिक व्यक्ति थे जिन्होंने राजनीति में नैतिकता के उच्चतम मानदंडों का पालन किया। वह महान राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने उपनिवेशवादी आधिपत्य खत्म करने और शासन सत्ता प्राप्त करने के लिए बहुत लंबे समय तक चले अहिंसक जन आंदोलन का नेतृत्व किया। वह परंपरानिष्ठ धार्मिक व्यक्ति थे जिन्होंने स्त्रियों की सामाजिक मुक्ति और जाति भेदभाव तथा जाति दमन व अंततः स्वयं जाति व्यवस्था समाप्त करने की पैरवी की तथा सामाजिक जीवन के सभी पक्षों में तर्क से काम लेने का आग्रह किया। वह एक ऐसी दुनिया का सपना देखने वाले व्यक्ति थे जिसमें सभी झगड़े हिंसा के प्रयोग बगैर सुलझाए जा सकते हैं।

फिर भी उनके व्यक्तित्व और राजनीति के ऐसे बहुत से पक्ष हैं जिनके बारे में लोगों को ज्यादा जानकारी नहीं है। उदाहरण के लिए नागरिक स्वतंत्रताओं और लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली के लिए उनकी पूर्ण प्रतिबद्धता या किसी जन आंदोलन में नेताओं और अवाम के बीच संबंध के बारे में उनकी समझ। इस पर्चे में मैं केवल एक क्षेत्र के बारे में चर्चा करूंगा जिसमें उन्होंने बहुत प्रतिभाशाली तरीके से काम किया लेकिन उन्हें केवल आंशिक सफलता मिली-अर्थात धर्म निरपेक्षता और सांप्रदायिकता। गांधी जी की बड़ी राजनीतिक विफलता सांप्रदायिकता के मोर्चे पर हुई। वह धर्म निरपेक्षता के प्रति सामान्य रूप से तथा हिंदू-मुसलिम एकता के लिए विशेष रूप से समर्पित थे लेकिन वह सांप्रदायिक नफरत और सांप्रदायिक फूट के पक्षधरों का सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं कर सके।

धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकंता की समस्या के प्रति गांधीजी के दृष्टिकोण पर बात करने से पहले उनकी एक बहुत बड़ी विशेषता को समझना जरूरी है। इसे उनके प्रशंसक और आलोचक दोनों ही अक्सर समझ नहीं पाए। ये दोनों उन्हें अपरिवर्तनशील व्यक्ति के रूप में देखते थे। लेकिन वास्तव में उन्होंने सत्य के साथ लगातार प्रयोग किया तथा समाज, राजनीति और सामाजिक परिवर्तन की अपनी सोच को बदला और उसमें संशोधन किया। इन तथा दूसरे क्षेत्रों में उनके विचार और क्रिया का निरंतर विकास होता रहा।

बहुत लोग उनके प्रारंभिक लेखन से जाति व्यवस्था, अंतर-जाति और अंतर धर्म भोज और विवाहों, नारी स्थिति, जमींदार-किसान संबंध, पूंजीवाद, समाजवाद, संसदीय प्रणाली, धर्म और राजनीति के बीच संबंध, मशीन के उपयोग के बारे में कथन उद्धृत करते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि मानव मूल्यों, सत्य और अहिंसा के लिए उनकी बुनियादी प्रतिबद्धता में तो कोई अंतर नहीं आया लेकिन इन तथा अन्य मुद्दों पर उनके विचारों में लगातार परिवर्तन होता रहा। कभी-कभी तो बहुत ज्यादा। यह परिवर्तन हमेशा रेडिकल दिशा में हुआ। यह तथ्य अक्सर भुला दिया जाता है क्योंकि उनके बहुत से आलोचक उनके किसी भी कथन को उन्हें छोटा दिखाने के लिए ठीक समझते हैं जबकि उनके बहुत से अनुयायी उनके प्रत्येक शब्द को अति पवित्र मानते हैं। ये दोनों तरह के लोग 1933 में उनके इस कथन से कुछ सीख सकते हैं-

> **वह महान राजनीतिज्ञ थे जिन्होंने उपनिवेशवादी आधिपत्य खत्म करने और शासन सत्ता प्राप्त करने के लिए बहुत लंबे समय तक चले अहिंसक जन आंदोलन का नेतृत्व किया। वह परंपरानिष्ठ धार्मिक व्यक्ति थे जिन्होंने स्त्रियों की सामाजिक मुक्ति और जाति भेदभाव तथा जाति दमन व अंततः स्वयं जाति व्यवस्था समाप्त करने की पैरवी की तथा सामाजिक जीवन के सभी पक्षों में तर्क से काम लेने का आग्रह किया।**

सत्य की अपनी तलाश में मैंने बहुत से विचारों का त्याग किया है और कई चीजें सीखी हैं.....और इसलिए यदि किसी को मेरे दो लेखनों में विसंगति लगती है और उसे मेरे मानसिक संतुलन में विश्वास है तो वह उसी विषय पर बाद के लेखन को चुनें।

1938 में भी उन्होंने ऐसा ही कुछ लिखा-अपने छात्र जीवन में मैंने इमर्सन की एक सूक्ति पढ़ी जिसे मैं कभी नहीं भुला पाया। संत ने कहा, मूर्खतापूर्ण सुसंगति छोटे दिमागों का गुण है। मैं छोटा दिमाग नहीं हो सकता क्योंकि सुसंगति कभी मेरा गुण नहीं रहा....मेरे हाल ही के लेखन के बारे में यह समझा जाना चाहिए कि उसने मेरे अपेक्षाकृत पुराने विचारों और कृत्यों को निरस्त कर दिया है। उम्र के साथ मेरे शरीर का क्षय हो रहा है। मुझे आशा है कि क्षय का यह नियम बुद्धि पर लागू नहीं होता। मुझे विश्वास है कि उसका क्षय नहीं हो रहा है बल्कि उसका विकास हो रहा है। और हां, उनके विचारों को समझने में गलतियां इसलिए भी होती हैं क्योंकि उनके विचार जानने के लिए बहुत से लोग व्यापक रूप से उनका अध्ययन नहीं करते। यह काम बहुत मुश्किल भी है क्योंकि उन्होंने इतना बोला और लिखा है कि वह उनके कलेक्टेड वर्क्स के सैकड़ों खंडों में समाया हुआ है।

सांप्रदायिकता से गांधी के अटूट विरोध और उसके खिलाफ उनके संघर्ष के विषय में हम अच्छी तरह से जानते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने हर तरह की सांप्रदायिकता हिंदू, मुसलिम या सिख सांप्रदायिकता का विरोध किया। जनवरी 1942 में उन्होंने लिखा, धर्म के कारण मनुष्य को मनुष्य से बांटने को मैं बिलकुल गलत मानता हूं.....। उन्होंने इस बुनियादी सांप्रदायिक मान्यता का भी खंडन किया कि हिंदुओं और मुसलमानों के राजनीतिक, आर्थिक हित इसलिए जुदा हो जाते हैं क्योंकि वे अलग-अलग धर्मों के अनुयायी हैं। 1942 में उन्होने लिखा, राजस्व, सफाई, पुलिस, न्याय अथवा जन सुविधाओं के इस्तेमाल के मामले में हिंदुओं और मुसलमानों में क्या अंतर हो सकता है?

अंतर केवल धार्मिक प्रथाओं और क्रियाकलापों को लेकर हो सकता है जिनसे धर्म निरपेक्ष शासन को कुछ लेना-देना नहीं होता। उन्होंने आगे कहा, हमें धार्मिक बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों के जहर से बाहर निकलना चाहिए। शासन का जहां तक सवाल है, किसी व्यक्ति का हित किसी हिंदू या मुसलमान के हित से कैसे अलग हो? दो राष्ट्रों के सिंद्धांत का खंडन करते हुए उन्होंने 1940 में लिखा, एक बंगाली मुसलमान वही भाषा बोलता है जो बंगाली हिदू बोलता है वही खाना खाता है। उसके हिंदू पड़ोसी जैसे ही मोनरंजन के साधन हैं। वे एक जैसे कपड़े पहनते हैं। दक्षिण के गरीबों, जो कि वास्तव में भारत के आवाम हैं, में भी यही बात देखने को मिलती है। वह नगर समिति और विधायिका जैसे उपनिवेशवादी निर्वाचित निकायों का जो विरोध करते थे, उसका एक कारण यह भी था कि उनमें हिंदू और मुसलिम हितों को बड़े गलत ढंग से जुदा और यहां तक कि विरोधी माना जाता है।

गांधीजी नागरिक स्वतंत्रताओं से पूरी तरह प्रतिबद्ध थे। इस बारे में मैं उनके दो कथन उद्धृत करना चाहता हूं। जनवरी 1922 में उन्होंने लिखा, अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने से पहले हमें मुक्त अभिव्यक्ति और मुक्त संघ का अधिकार देना चाहिए। हमें अपना जीवन देकर भी इन अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए। बाद में उन्होंने स्पष्ट किया कि इन प्राथमिक अधिकारों का क्या मतलब है, बोलने की आजादी का मतलब है कि यदि वह आहत करे तो भी उस पर आघात न किया जाए। प्रेस की आजादी का सम्मान केवल तभी हुआ माना जाएगा जब प्रेस कड़ी टिप्पणी कर सके और मामलों को रखने के लिए स्वतंत्र हो....। संघ की आजादी का सम्मान तभी हुआ माना जाएगा जब लोगों की सभाएं क्रांतिकारी परियोजनाओं पर भी चर्चा कर सकें।....स्वराज, खिलाफत और पंजाब के लिए संघर्ष सबसे पहले इस तीन तरह की आजादी के लिए संघर्ष है। जून 1939 में उन्होंने लिखा, अहिंसा के साथ नागरिक स्वतंत्रता स्वराज की दिशा में पहला कदम है। यह राजनीतिक और सामाजिक जीवन की प्राण वायु है। यह स्वतंत्रता का आधार है। इसे विरल करने या उसके साथ समझौता करने की कोई गुंजाइश नहीं है। यह जीवन के लिए जल के समान है। मैंने कभी नहीं सुना है कि पानी को विरल बनाया जा सकता है।

लेकिन गांधी जी ने इसका एक अपवाद स्वीकार किया। उन्होंने सांप्रदायिक नफरत फैलाने वालों की बोलने और लिखने के आजादी पर प्रतिबंध लगाने की पैरवी की। 1939 में अखिल भारतीय साहित्य परिषद को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, यदि मेरा पास सत्ता होती तो मैं ऐसे साहित्य को वर्जित कर देता जो व्यक्तियों, वर्गों या जातियों के बीच सांप्रदायिकता, कट्टरपन, दुर्भावना या नफरत पैदा करता है। 1947 में एक अखबार में हिंदू सांप्रदायिक प्रचार का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि स्वतंत्र भारत में इस तरह का अखबार नहीं चल सकता। उन्होंने पूछा कि क्या प्रेस की आजादी जन मानस को विषाक्त करने के लिए है?

जनवरी 1922 में उन्होंने लिखा, अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने से पहले हमें मुक्त अभिव्यक्ति और मुक्त संघ का अधिकार देना चाहिए। हमें अपना जीवन देकर भी इन अधिकारों की रक्षा करनी चाहिए। बाद में उन्होंने स्पष्ट किया कि इन प्राथमिक अधिकारों का क्या मतलब है, बोलने की आजादी का मतलब है कि यदि वह आहत करे तो भी उस पर आघात न किया जाए।

गांधी जी का मानना था कि सांप्रदायिकता न केवल राष्ट्र विरोधी है बल्कि हिंदू सांप्रदायिकता के मामले में हिंदू विरोधी और मुसलिम सांप्रदायिकता के मामले में मुसलिम विरोधी है। उदाहरण के लिए दो राष्ट्रों के सिद्धांत के आधार पर मोहम्मद अली जिन्ना के सांप्रदायिक प्रचार का उल्लेख करते हुए उन्होंने अप्रैल 1940 में लिखा, वह (जिन्ना) और उनके जैसे विचार रखने वाले दूसरे लोग इसलाम की कोई सेवा नहीं कर रहे हैं। वे इसलाम शब्द में अंतर्निहित संदेश की गलत व्याख्या कर रहे हैं। मार्च 1947 में उन्होंने लिखा, हिंदुओं की हत्या करके मुसलमान इसलाम की सेवा नहीं करेंगे बल्कि उसे नष्ट करेंगे। और यदि हिंदू यह सोचते हैं वे इसलाम को मिटा देंगे तो इसका मतलब हिंदू धर्म को मिटाना होगा।

सब जानते हैं कि 1946 और 1947 के दौरान गांधी जी मौजूदा सांप्रदायिक मानसिकता, जन सांप्रदायिक दबाव और वहशियाना सांप्रदायिक हत्याओं के विरोध में चट्टान की तरह खड़े हो गए तथा सांप्रदायिकता के खिलाफ और हिंदू-मुसलिम-सिख एकता के पक्ष में अथक अभियान में जुट गए। नफरत से छिन्न-भिन्न नोआखाली, बिहार, कलकत्ता और दिल्ली में उनका काम एक आख्यान बन गया है।

सांप्रदायिकता की समझ के बारे में गांधी जी के विचारों के कई पक्ष हैं। मैं इनमें से कुछ के विषय में ही चर्चा करूंगा। सबसे पहले मैं उनके कृत्य और विचार के उस पक्ष को उठाऊंगा जिसे बहुत गलत समझा और व्याख्यायित किया जाता है अर्थात धर्म-निरपेक्षता की उनकी समझ-सांप्रदायिकता का अर्थ।

सब जानते हैं कि अत्यधिक धार्मिक व्यक्ति होने के बावजूद गांधी जी बुनियादी तौर पर पूर्ण रूप से धर्म-निरपेक्ष थे और वह भारत को धर्म निरपेक्ष लोकतांत्रिक देश बनाना चाहते थे। उदाहरण के लिए 1947 में उन्होंने कहा कि शासन को पूरी तरह से धर्म निरपेक्ष होना चाहिए। 9 अगस्त 1942 को उन्होंने जोर देकर कहा, स्वतंत्र भारत हिंदू राज नहीं होगा। वह भारतीय राज होगा जो किसी धार्मिक पंथ या समुदाय की बहुसंख्या पर आधारित नहीं होगा बल्कि बगैर किसी धार्मिक भेदभाव के पूरे आवाम के प्रतिनिधित्व पर आधारित होगा। स्वतंत्र भारत के अपने विजन के बार में उन्होंने 1940 में लिखा, भारत एक बड़ा देश है, विभिन्न संस्कृतियों से बना बड़ा राष्ट्र जो एक दूसरे से जुड़ रही हैं और एक दूसरे की पूरक हैं। हिंद स्वराज में 1909 में वह पहले ही लिख चुके थे, दुनिया के किसी भी हिस्से में एक राष्ट्र और एक धर्म पर्यायवाची नहीं हैं। भारत में भी ऐसा कभी नहीं हुआ है।

इसके अलावा गांधी जी को धर्म निरपेक्षता की संपूर्ण तथा आधुनिक समझ थी। दूसरी जगहों की तरह भारत में भी धर्म निरपेक्षता की चार तरह से व्याख्या की गई है।

पहली-धर्म को राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। धर्म राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा तथा सामाजिक जीवन

और संस्कृति के बड़े क्षेत्रों से अलग रहना चाहिए। धर्म व्यक्ति का निजी या व्यक्तिगत मामला समझा जाना चाहिए। इसे अस्वीकार करने वाली धर्म निरपेक्षता की तथाकथित भारतीय परिभाषा की बात करना धर्म निरपेक्षता का निषेध है। साथ ही धर्म निरपेक्षता का मतलब जीवन से धर्म को निकालना या धर्म का विरोध नहीं है। धर्म निरपेक्ष शासन का अर्थ धर्म को हतोत्साहित करने वाला शासन नहीं है।

दूसरी-किसी बहुधर्म समाज में धर्म निरपेक्षता का यह भी मतलब है कि शासन सभी धर्मों के प्रति तटस्थ रहे या जैसा कि बहुत से धार्मिक व्यक्ति कहते हैं निरीश्वरवाद सहित सभी धर्मों को बराबर सम्मान दे।

तीसरी-धर्म निरपेक्षता का आगे मतलब है कि शासन सभी नागरिकों को बराबर समझे और उनके धर्म के आधार पर उनके साथ भेदभाव करे।

चौथी-भारत के संदर्भ में धर्म निरपेक्षता की एक और विशेषता है। भारत में धर्म निरपेक्षता उपनिवेशवाद के खिलाफ सभी भारतीयों को इकट्ठा करने और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया के हिस्से की तरह एक विचारधारा के रूप में आई। इसके साथ-साथ सांप्रदायिकता एक अत्यधिक विभाजक सामाजिक और राजनीतिक ताकत के रूप में उभरी। परिणामस्वरूप धर्म निरपेक्षता का मतलब सांप्रदायिकता का स्पष्ट विरोध भी हुआ। यह सुविदित है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विजन में धर्म निरपेक्ष समाज और धर्म निरपेक्ष शासन शामिल है। आंदोलन ने धर्म निरपेक्षता की वैसी ही व्यापक व्याख्या की है जैसा कि हमने पिछले पैराओं में की है। इस विजन और उसके लिए प्रतिबद्धता के कारण ही स्वतंत्र भारत विभाजन और विभाजन दंगों के बावजूद धर्म निरपेक्ष संविधान तैयार हो सका और धर्म निरपेक्ष शासन की आधारशिला रख सका।

लेकिन धर्म निरपेक्षता के प्रति गांधी जी की सोच के कारण कुछ लोग धर्म निरपेक्षता के सकारात्मक मूल्य तथा उसकी स्वीकृत परिभाषा के सामने सवाल खड़े करते हैं। वास्तव में गांधी जी तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे गहरे धार्मिक व्यक्तियों ने धर्म निरपेक्षता को राष्ट्रीय आंदोलन के तरीके से ही परिभाषित किया और उसे जिया।

धर्म निरपेक्षता की गांधी जी की परिभाषा और इसके लिए उनकी प्रतिबद्धता को बड़ी आसानी से प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए मुझे उनके बहुत से उद्धरणों का इस्तेमाल करना होगा। उनके बिना बहुत से लोगों को समझाना मुश्किल होगा क्योंकि इस विषय में गांधी जी के विचारों को पूरी तरह से धुंधलाया गया है।

सब इस बात से सहमत होंगे कि धर्म निरपेक्षता की परिभाषा के दूसरे पहलू के अनुसार गांधी जी ने कहा कि व्यक्ति, कांग्रेस और शासन सभी धर्मों का बराबर सम्मान करें। लेकिन उन्होंने इस प्रतिपादन या सर्व धर्म समभाव तथा सभी धर्मों के प्रति तटस्थता में अंतर नहीं किया। गांधी द्वारा फिर से ड्राफ्ट किए गए मौलिक अधिकारों के बारे में प्रसिद्ध कराची संकल्प में उन्होंने

परिणामस्वरूप धर्म निरपेक्षता का मतलब सांप्रदायिकता का स्पष्ट विरोध भी हुआ। यह सुविदित है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विजन में धर्म निरपेक्ष समाज और धर्म निरपेक्ष शासन शामिल है। आंदोलन ने धर्म निरपेक्षता की वैसी ही व्यापक व्याख्या की है जैसा कि हमने पिछले पैराओं में की है। इस विजन और उसके लिए प्रतिबद्धता के कारण ही स्वतंत्र भारत विभाजन और विभाजन दंगों के बावजूद धर्म निरपेक्ष संविधान तैयार हो सका और धर्म निरपेक्ष शासन की आधारशिला रख सका।

घोषणा की, शासन सभी धर्मों के प्रति तटस्थ रहेगा। सभी धर्मों के अनुयायियों के प्रति गांधी जी के बराबर सम्मान में अनीश्वरवादियों के प्रति सम्मान शामिल था।

यह बात 1940 की दशक में उनके दो अनीश्वरवादी अनुयायियों और प्रशंसकों अर्थात डी रामास्वामी और जी रामचंद्र राव (प्रो.गोरा नाम से विख्यात) के साथ इंटरव्यू से स्पष्ट हो जाती है। गांधी जी के एक निकट सहयोगी के जी मशरुवाला ने 1950 में बताया कि गांधी जी द्वारा अपने कथन ईश्वर सत्य है को बदलकर सत्य ईश्वर है कर दिए जाने से उन्हें सब धर्मों की अपनी कांग्रेस में उनको (अनीश्वरवादियों) को बराबर स्थान देने में आसानी हो गई। यदि अनीश्वरवादी सत्य को सर्वोत्तम लक्ष्य स्वीकार कर लें तो उन्हें सर्व धर्म समभाव में ईश्वरवादियों के बराबर स्थान मिल जाता है।

दिलचस्प बात है कि गांधी जी अनीश्वरवादी प्रो.गोरा की पुत्री का विवाह एक हरिजन युवक के साथ ईश्वर के नाम पर नहीं बल्कि सत्य के नाम पर कराने के लिए राजी हो गए। गांधी जी के वर्धा आश्रम के साथियों ने इसका सम्मान करते हुए उनकी मृत्यु के बाद भी इसी ढंग से दो युवाओं का विवाह कराया।

इसके पहले 1925 में गांधी जी ने जो कांग्रेस शपथ तैयार की थी उसमें ईश्वर का आशीर्वाद लेना पड़ता था। लेकिन जब इस पर आपत्ति की गई तो उन्होंने तुरंत स्वीकार कर लिया, नैतिक आपत्ति का जहां तक प्रश्न है तो कांग्रेस शपथ जिसे तैयार करने पर मुझे गर्व है, से आवश्यकता पड़ने पर ईश्वर के उल्लेख को निकाला जा सकता है। यदि पहले यह आपत्ति की गई होती तो मैं उसे तुरंत स्वीकार कर लेता।

यह भी दिलचस्प बात है कि जिन दो व्यक्तियों से गांधी जी बहुत प्यार करते थे और सम्मान करते थे दोनों अनीश्वरवादी थे। एक गोपाल कृष्ण गोखले जिन्हें वह अपना राजनीतिक गुरु मानते थे और दूसरे जवाहरलाल नेहरू जिन्हें उन्होंने सार्वजनिक रूप से अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी घोषत किया।

धर्म निरपेक्षता के तीसरे पहलू का जहां तक संबंध है 1931 के कराची संकल्प में यह घोषणा भी की गई कि स्वतंत्र भारत में प्रत्येक नागरिक को अंतर्रात्मा की स्वतंत्रता तथा स्वतंत्र रूप से अपना धर्म अपनाने और व्यवहार करने का अधिकार होगा, जाति, वंश या लिंग का विचार किए बगैर सभी नागरिक कानून के सामने बराबर होंगे और सार्वजनिक रोजगार, पद या सम्मान तथा व्यापार या व्यवसाय चलाने के मामले में किसी भी नागरिक के लिए धर्म, जाति, वंश या लिंग की वजह से अयोग्यता पैदा नहीं होगी।

धर्म निरपेक्षता के चौथे पहलू का जहां तक संबंध है, सांप्रदायिकता के प्रति उनके विरोध के बार में मैं पहले ही कह चुका हूं।

विपिन चंद्रा (धर्म निरपेक्ष और आधुनिक भारत की खोज-गांधी एक पुनर्विचार से साभार)

फिल्मों में आजादी का जुनून

ब्रिटिश राज के बाद फिल्मों में देशभक्ति का जज्बा पूरे उफान पर था। तत्कालीन दौर में निर्माता-निर्देशकों ने आजाद भारत की तस्वीर को कैनवास पर सजाया। शहीद, हकीकत, हिंदुस्तान की कसम, पूरब और पश्चिम, क्रांति, उपकार, लीडर, जिस देश में गंगा बहती है और जागृति आदि फिल्मों ने देशप्रेम को नया आयाम दिया है।

अपनी आजादी को हम हरगिज भुला सकते नहीं, सर कटा सकते हैं, लेकिन सर झुका सकते नहीं। ब्रिटिश राज के बाद फिल्मों में देशभक्ति का जज्बा पूरे उफान पर था। तत्कालीन दौर में निर्माता-निर्देशकों ने आजाद भारत की तस्वीर को कैनवास पर सजाया। शहीद, हकीकत, हिंदुस्तान की कसम, पूरब और पश्चिम, क्रांति, उपकार, लीडर, जिस देश में गंगा बहती है और जागृति आदि फिल्मों ने देशप्रेम को नया आयाम दिया है। इन फिल्मों ने लोगों के मन में देशभक्ति का नया जोश और जुनून पैदा किया। 1962 या 1965 में चाहे चीन के साथ जंग हो या 1971 की पाकिस्तान के साथ लड़ाई, लोगों के मन में देशभक्ति का उफान लाने में फिल्में कभी पीछे नहीं रहीं बल्कि आगे बढ़कर रास्ता दिखाने का काम किया। बालीवुड की देशभक्ति से परिपूर्ण फिल्मों ने दर्शकों का नया वर्ग तैयार किया। युद्ध में शहीद होने वाले सैनिकों की याद में ऐ मेरे वतन के लोगों, जरा आंख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुर्बानी सुनकर देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू की आंखों में पानी भर आया था। मनोज कुमार ने अपनी फिल्मों में लाल बहादुर शास्त्री के जय जवान जय किसान के सपने को फिल्म उपकार में रुपहले पर्दे पर जीवंत किया। मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती गीत में उन्होंने देश के किसानों और जवानों की भावनाओं को बखूबी पर्दे पर उतारा है। पूरब और पश्चिम में मनोज कुमार विदेश जाते हैं और भारतीय संस्कृति को भूल चुके अप्रवासी भारतीयों को भारतीय संस्कृति की याद दिलाते हैं। है प्रीत जहां की रीति सदा, मैं गीत वहीं के गाता हूं, भारत का रहने वाला हूं भारत की बात सुनाता हूं भारतवासियों को देश की प्राचीन समृद्धि और विरासत का एहसास दिलाता हुआ उनको अपनी जड़ों की ओर लौटने के लिए प्रेरित करता है। जहां डाल-डाल पर सोने की चिड़िया करती है बसेरा वह भारत देश है मेरा भी एक ऐसा ही गीत है जिसे सुनकर भारतवासियों का सीना गर्व से फूल जाता है। महात्मा गांधी के स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान को रेखांकित करता फिल्म जागृति का गीत दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल, साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल सुनकर पत्थर दिल आदमी की आंख से भी आंसुओं की धारा बह निकलेगी। इसी फिल्म का एक अन्य गीत आओ बच्चों तुम्हें दिखाएं झांकी हिंदुस्तान की में भारत के विभिन्न हिस्सों में ऐतिहासिक धरोहरों का महत्व दर्शाया गया है। बालीवुड के शहंशाह अमिताभ बच्चन की देशप्रेमी का अंतरा हम आपस में लड़ बैठे तो देश को कौन संभालेगा, कोई बाहर वाला अपने घर से हमें निकालेगा में भारतीयों को ब्रिटिश हुकूमत के अत्याचारों की याद दिलाते हुए आपस में मिलजुलकर रहने का संदेश दिया गया है। दिलीप कुमार ने पहले लीडर और बाद में कर्मा में देशभक्ति से परिपूर्ण किरदार को जीवंत किया। राजकपूर की फिल्म श्री 420 का गीत मेरा जूता है जापानी, ये पतलून हिंदुस्तानी, सिर पर लाल टोपी रूसी फिर भी दिल है हिंदुस्तानी में भारतीयता का सबसे मुखर अंदाज पेश किया गया है। भारतीय चाहे किसी भी देश में रहें, कोई भी पोशाक पहनें, उनका दिल हमेशा हिंदुस्तानी ही रहता है।

आज के दौर में देशभक्तिपूर्ण फिल्मों में बार्डर, लगान, एलओसी कारगिल, रोजा, मिशन कश्मीर, दिल से, का नाम लिया जा सकता है, जिसमें देशभक्ति के साथ ओजस्वी पुटमें आतंकवाद से लड़ने का संदेश दिया गया है। फिल्म हीरो में सनी देओल का डायलाग, दूध मांगा तो खीर देंगे, कश्मीर मांगा तो चीर देंगे हमारे पड़ोसी देश को यह समझाने के लिए काफी है कि कश्मीर को हासिल करने का सपना देखना उसके वजूद पर ही सवालिया निशान लगा सकता है ।

• क्षितिज मिश्रा

विद्यार्थियों के नाम पत्र

भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त की ओर से जेल से भेजा गया यह पत्र 19 अक्टूबर, 1929 को पंजाब छात्र संघ, लाहौर के दूसरे अधिवेशन में पढ़कर सुनाया गया था। अधिवेशन के सभापति थे नेताजी सुभाष चंद्र बोस।

इस समय हम नौजवानों से यह नहीं कह सकते कि वे बम और पिस्तौल उठाएं। आज विद्यार्थियों के सामने इससे भी अधिक महत्वपूर्ण काम है। आने वाले लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस देश की आजादी के लिए जबरदस्त लड़ाई की घोषणा करने वाली है। राष्ट्रीय इतिहास के इन कठिन क्षणों में नौजवानों के कंधों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पड़ेगी। यह सच है कि स्वतंत्रता के इस युद्ध में अग्रिम मोर्चों पर विद्यार्थियों ने मौत से टक्कर ली है। क्या परीक्षा की इस घड़ी में उसी प्रकार की दृढ़ता और आत्मविश्वास का परिचय देने से हिचकिचाएंगे? नौजवानों को क्रांति का यह संदेश देश के कोने-कोनेमें पहुंचाना है, फैक्टरी-कारखानों के क्षेत्रों में, गंदी बस्तियों और गांवों की जर्जर झोपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रांति की अलख जगानी है जिससे आजादी आएगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असंभव हो जाएगा। पंजाब वैसे ही राजनीतिक तौर पर पिछड़ा हुआ माना जाता है। इसकी भी जिम्मेदारी युवक वर्ग पर ही है। आज वे देश के प्रति अपनी असीम श्रद्धा और शहीद यतींद्र नाथ दास के महान बलिदान से प्रेरणा लेकर यह सिद्ध कर दें कि स्वतंत्रता के इस संघर्ष में वे दृढ़ता से टक्कर ले सकते हैं।

भगत सिंह, 22 अक्टूबर 1929 के ट्रिब्यून (लाहौर) में प्रकाशित

जो नहीं होना था

हम अच्छे समय से जितना सीख सकते हैं उससे कम बुरे समय से नहीं

रेमंड विलियम्स की ये पंक्तियां न सिर्फ जीवनानुभव के संदर्भ में बल्कि साहित्य के संदर्भ में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं, अगर थोड़ा और आगे बढ़कर कहें तो सबसे बुरा समय सबसे अच्छी कविता के लिए सर्वाधिक उर्वर समय होता है। यही कारण है कि बुरे

विद्रोह कविता का स्वाभाविक मिजाज है। कविता सपना भी दिखाती है लेकिन आजादी के बाद देश में जो स्थितियां पैदा हुई वह सपने तोड़ने वाली थीं। इसका असर आजादी के बाद की हिंदी कविता में साफ-साफ दिखाई देता है। आजादी के बाद की कविताएं हमें बार-बार यह अहसास दिलाती हैं कि इन साठ वर्षों में हमें ऐसा कुछ भी नहीं मिला जिसको पाकर हम बदलाव का अहसास करें। सठिआए हुए इस लोकतंत्र में आखिर ऐसा क्यों है कि बचपन और बुढ़ापे के बीच जवानी नहीं आती।

समय की अच्छी कविताएं कुछ उसी तरह जन्म लेती हैं जैसे कीचड़ में कमल। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि संभावित अच्छी कविताएं बुरे समय आने का इंतजार करती हैं बल्कि बुरे समय के साथ वे उसी तरह आती हैं जैसे महारथी कर्ण के साथ कवच कुंडल। इसलिए जीवन संघर्ष और ईमानदार अनुभव से उपजी कविताएं हमें बुरे समय के आघात सहने की ताकत देती हैं और लड़ने की हिम्मत भी।

आजादी के पूर्व की हिंदी कविता में विद्रोह की जो आग है उसको हमें इसी अर्थ में देखना चाहिए। विद्रोह कविता का स्वाभाविक मिजाज है। कविता सपना भी दिखाती है लेकिन आजादी के बाद देश में जो स्थितियां पैदा हुईं वह सपने तोड़ने वाली थीं। इसका असर आजादी के बाद की हिंदी कविता में साफ-साफ दिखाई देता है। आजादी के बाद की कविताएं हमें बार-बार यह अहसास दिलाती हैं कि इन साठ वर्षों में हमें ऐसा कुछ भी नहीं मिला जिसको पाकर हम बदलाव का अहसास करें। सठिआए हुए इस लोकतंत्र में आखिर ऐसा क्यों है कि बचपन और बुढ़ापे के बीच जवानी नहीं आती। सूरज निकलते ही डूब जाता है।

आजादी से पहले एक सपना था कि आजादी के बाद सब कुछ बदल जाएगा। यह सपना हमें उस समय की हिंदी कविताओं में भी दिखाई देता है। उसी सपने ने हमारे भीतर राष्ट्रभक्ति को जन्म दिया और उस भक्ति ने राष्ट्र के लिए मर मिटने की प्रेरणा दी जिससे प्रेरित होकर अनेक लोगों ने राष्ट्र के लिए अपनी कुर्बानियां दीं। लेकिन आजादी के बाद जो बदलाव आए वह भी उन्हीं लोगों के लिए थे जो आजादी से पूर्व सत्ता पक्ष से जुड़े रहे। हिंदी कवियों ने इस विसंगति को समझा और आजादी के तुरंत बाद जो कविताएं प्रकाश में आईं उनमें राष्ट्रभक्ति की जगह एक विद्रोह का भाव था। वह विद्रोह किसी विदेशी शासक के प्रति नहीं था बल्कि उन लोगों के प्रति था जो अपना बनकर देश को लूटने में लगे हुए थे। ऐसे लोगों के लिए ही गोपाल सिंह नेपाली ने लिखा-

बदनाम हुए बटमार मगर
घर तो रखवालों ने लूटा
चंदा सी मेरी दुल्हन को
नवलाख सितारों ने लूटा।

यह समय भयानक भ्रांति का समय है। विश्व के संदर्भ में इतिहासकार एरिक हांस ने लिखा है, लगभग वही स्थिति आजादी के बाद के भारत की है। उन्होंने लिखा है, बीसवीं सदी में संपूर्ण मानव समाज एक ऐसी स्थिति में है जिसमें तरह-तरह की उलझनों, निरर्थकताओं, नपुंसकताओं, भ्रांतियों और बेहतर बनाने का दावा करने वाले प्रायः सभी सामाजिक कार्यक्रम और प्रयोग ही नहीं, आदर्श और विचार भी असफल साबित हुए हैं।

आजादी के बाद के वर्षों में हमने यह देखा है कि जो चीजें जिस रूप में हम देख रहे हैं वह वही नहीं हैं। चेहरों के भीतर चेहरे हैं, जिन्हें समझना आसान नहीं है। यही कारण है कि भारत के बाद आजाद हुआ चीन हमसे जितना आगे निकल गया, हम आगे बढ़ने के बजाय लगातार पीछे होते जा रहे हैं। हम सांप्रदायिक होकर संप्रदायवाद का विरोध करते हैं, राष्ट्रद्रोही होकर राष्ट्रगीत गाते हैं और हर क्षण लोकतंत्र की हत्या करते हुए सबसे बड़े लोकतांत्रिक बने हुए हैं। ऐसे ही लोकतंत्र के संबंध में रघुवीर सहाय लिखते हैं-

निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हंसे
लोकतंत्र का अंतिम क्षण है
कह कर आप हंसे
सब के सब हैं भ्रष्टाचारी
कह कर आप हंसे
चारों ओर बड़ी लाचारी
कहकर आप हंसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हंसे।

इस हंसी के भीतर कितनी विद्रूपता है, यह सहज ही समझा जा सकता है। आदमी जब रोने की जगह हंसने लगे और क्रोध की जगह दांत दिखाए तो ऐसे समय में कविता की भूमिका बढ़ जाती है। यह वह समय है जिसमें हम जितनी तेजी से विकास कर रहे हैं, उतनी ही तेजी से विनाश की ओर

आजादी के बाद के वर्षों में हमने यह देखा है कि जो चीजें जिस रूप में हम देख रहे हैं वह वही नहीं हैं। चेहरों के भीतर चेहरे हैं, जिन्हें समझना आसान नहीं है। यही कारण है कि भारत के बाद आजाद हुआ चीन हमसे जितना आगे निकल गया, हम आगे बढ़ने के बजाय लगातार पीछे होते जा रहे हैं। हम सांप्रदायिक होकर संप्रदायवाद का विरोध करते हैं, राष्ट्रद्रोही होकर राष्ट्रगीत गाते हैं और हर क्षण लोकतंत्र की हत्या करते हुए सबसे बड़े लोकतांत्रिक बने हुए हैं।

अग्रसर हो रहे हैं। संचार माध्यमों के बढ़ते प्रभाव के कारण एक ओर जहां हमारी भौगोलिक दूरियां कम हो रही हैं वहीं संवेदनहीनता के कारण हम बिल्कुल पास रहकर भी अपने लोगों से दूर होते जा रहे हैं। हमारी लड़ाई अब पहले से ज्यादा

जटिल और थका देने वाली है। हमें यह पता नहीं कि हमारे शत्रु कहां-कहां हैं। हमें यह भी पता नहीं कि हमारे ऊपर कब हमला हो जाएगा। हम बहुत पहले मार दिए जाते हैं और बहुत बाद में पता चलता है। हम कबके मर चुके हैं। हमारी स्थिति उस मुर्दे की तरह है जो न कुछ सोचता है और न कुछ कहता है-

मुर्दा कुछ नहीं सोचता
मुर्दा कुछ नहीं कहता
जो न कुछ सोचता है
और न कुछ कहता है
वह मुर्दा है।

हमारी स्थिति लगभग यही हो गई है आजादी के बाद। धूमिल ने अपनी एक कविता में यह सवाल उठाया है-

आजादी क्या सिर्फ तीन रंगों का नाम है
जिसे एक पहिया ढोता है
या इसका कोई मतलब होता है ?

आजादी के इन 60 वर्षों में आखिर हमने क्या हासिल किया है। यही न कि लोकतंत्र का चौथा खंभा अब ढहने के कगार पर है और हम यह भ्रम पाले हुए हैं कि अखबार और दूसरे संचार माध्यम जनता की भाषा में जनता के लिए काम करेंगे। लेकिन हमें यह उम्मीद रखनी चाहिए कि इस जटिल समय में जब सब कुछ साथ छोड़ देगा और सभी इस कुटिल व्यवस्था की तरफदारी में जुटे रहेंगे तब भी कविता इस संग्राम में डटी रहेगी और दबे कुचलों को जुबान देती रहेगी।

कविता ही हमें यह बताएगी कि जो होना था वह नहीं हुआ। पोलैंड की प्रसिद्ध कवयित्री शिम्बोस्की की कुछ पंक्तियां समें यही बताती हैं-

हमारी बीसवीं सदी को
दूसरी सदियों से बेहतर होना था
लेकिन वह कैसे होगा अब
जबकि गिनती के दिन शेष हैं
कदम लड़खड़ा रहे हैं
सांसें उखड़ रही हैं,
ऐसी बहुत सी बातें हुई हैं,
जिन्हें नहीं होना था
जो कुछ होना था
वह नहीं हुआ।

दूसरे शब्दों में कहें तो आजादी के बाद जो होना था वह नहीं हुआ और जो हुआ उसे नहीं होना था। फिर भी इन्हीं बादलों के बीच से सूरज निकलेगा, यह उम्मीद भी आज की हिंदी कविता हमें दिलाती है।

राधेश्याम तिवारी

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं की एक अखिल भारतीय संगठन बनाने की योजनाएं अनेक भारतीय जन तैयार करते आ रहे थे। लेकिन इस विचार को एक ठोस और अंतिम रूप देने का श्रेय एक सेवानिवृत्त अंग्रेज सिविल सर्वेंट एओ ह्यूम को जाता है। उन्होंने प्रमुख भारतीय नेताओं से संपर्क किया और उनके सहयोग से बंबई में दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया। इसकी अध्यक्षता डब्ल्यू सी बनर्जी ने की तथा इसमें 72 प्रतिनिधि शामिल थे। राष्ट्रीय कांग्रेस के उद्देश्य इस प्रकार घोषित किए गए - देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करना, जाति-धर्म-प्रांत का भेद किए बिना राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित तथा मजबूत करना, जनप्रिय मांगों को निरूपण तथा उन्हें सरकार के सामने रखना और सबसे महत्वपूर्ण यह कि देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना।

कहा जाता है कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे ह्यूम का प्रमुख उद्देश्य शिक्षित भारतीयों में बढ़ रहे असंतोष की सुरक्षित निकासी के लिए एक सेफ्टी वाल्व बनाना था। वे असंतुष्ट राष्ट्रवादी शिक्षित वर्गों तथा असंतुष्ट किसान जनता के आपसी मेल को रोकना चाहते थे।

मगर यह सेफ्टी वाल्व का सिद्धांत सच्चाई का बहुत छोटा अंश है और यह पूरा अपर्याप्त तथा भ्रामक है। राष्ट्रीय कांग्रेस सबसे बढ़कर राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों की इस आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करती थी कि उनकी आर्थिक और राजनीतिक प्रगति के लिए कार्यरत एक राष्ट्रीय संगठन बनाया जाए। कुछ जबरदस्त शक्तियों के कार्यरत होने के परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय आंदोलन पहले से ही फैल रहा था। इस आंदोलन के जन्म के लिए किसी एक व्यक्ति या कुछेक व्यक्तियों को श्रेय नहीं दिया जा सकता। ह्यूम के अपने उद्देश्य भी मिलेजुले थे। वे सेफ्टी वाल्व बनाने के विचार से कहीं अधिक श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित थे। वे भारत से तथा इसके गरीब किसानों से सचमुच प्यार करते थे। कुछ भी हो, राष्ट्रीय कांग्रेस को जन्म देने में जिन भारतीय नेताओं ने ह्यूम से सहयोग किया वे ऊंचे चरित्र वाले देशभक्त लोग थे। उन्होंने जानबूझकर ह्यूम की सहायता इसलिए ली कि वे राजनीतिक कार्यकलाप के आरंभ में ही अपने प्रयासों के प्रति सरकार की शत्रुता मोल लेना नहीं चाहते थे। उन्हें आशा थी कि एक सेवानिवृत्त सिविल सर्वेंट की उपस्थिति अधिकारियों की आशंकाओं का समाधान करेगी। अगर ह्यूम कांग्रेस का उपयोग एक सेफ्टी वाल्व के रूप में करना चाहते थे तो कांग्रेस के आरंभिक नेताओं को आशा थी कि वे ह्यूम का उपयोग एक तड़ित चालक के रूप में कर सकेंगे।

इस तरह 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में, विदेशी शासन से भारत की मुक्त का संघर्ष आरंभ हो गया। इसके बाद तो राष्ट्रीय आंदोलन बढ़ता ही गया तथा देश और देश की जनता ने स्वाधीन होने तक आराम को हराम जाना। आरंभ से ही कांग्रेस ने एक पार्टी नहीं, बल्कि एक आंदोलन का काम किया। वर्ष 1886 में कांग्रेस के 436 प्रतिनिधि विभिन्न स्थानीय संगठनों तथा समूहों द्वारा चुने गए थे। इसके बाद कांग्रेस हर वर्ष दिसंबर में और हर बार देश के एक नए भाग में अपने अधिवेशन करती रही। जल्दी ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या बढ़कर हजारों में पहुंच गई। यह इस बात का प्रतीक था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम स्त्रियों को उस पतित अवस्था से उबारेगा जिसमें वे सदियों के कालक्रम में पहुंचा दी गई थीं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कोई 'एक धारा नहीं थी जिसमें राष्ट्रवाद की नदी आगे बढ़ी। प्रांतीय सम्मेलन, और स्थानीय समितियों और राष्ट्रवादी समाचार पत्र भई बढ़ते हुए राष्ट्रवादी आंदोलन के प्रमुख उद्घोषक थे। खासकर प्रेस राष्ट्रवादी विचारों तथा आंदोलन को फैलाने का प्रमुख साधन बन गया था। इस काल के अधिकांश समाचारपत्र राष्ट्रवादी गतिविधियों के मुखपत्र के रूप में आरंभ किए जाते थे।

जेल में जिंदगी

आजादी के साठ साल में देश कहां से कहां पहुंच गया लेकिन कुछ लोग छूट गए। कुछ लोग पीछे छूटे हैं तो कुछ कहां छूट गए, किसी को पता नहीं चला। कुछ दिन हुए एक खबर छपी....एक नाम दया के साथ, विस्मय के साथ लोगों की जबां पर चढ़ा और फिर उतर गया। ये नाम मचांग का था....मचांग जो भूलवश जेल में रह गया। एक-दो दिन नहीं....दस-बारह महीने नहीं....दो-चार साल नहीं....54 साल.... पूरे 54 साल यानी कि एक पूरी जिंदगी।

मचांग को याद नहीं कि कब....उसकी जवानी परवान चढ़ी, कब बुढ़ापे ने दस्तक दी, कब चेहरा झुर्रियों में खो गया और कैसे सीधी तनी रीढ़ झुकती चली गई? पिछले चौवन सालों से उसकी जिंदगी में गिनती की कुछ चीजें हैं। जेल की सलाखें, एल्यूमीनियम की टेढ़ी-मेढ़ी प्लेट, टूटा गिलास, दो जोड़ी कैदी की वर्दी, एक फटा कंबल। ऐसी ही कुछ और चीजें आप अपनी समझ से इसमें जोड़ सकते हैं। पिछले चौवन सालों में उसने सलाखों के अंदर कुछ कदम दीवार से सलाखों तक और सलाखों से दीवार तक बार-बार, बार-बार नापे हैं। इन्हीं चंद कदमों में उसकी दुनिया शुरू भी होती है और खत्म भी हो जाती है। पिछले चौवन सालों में उसकी कल्पनाएं भी जेल की खिड़की से दिखने वाले आकाश जितनी ही सीमित हो गई हैं। उसके लिए तो आकाश सिर्फ उतना ही है जितना जेल के अंदर से दिखता है। आज वह सतहत्तर साल का है। चौवन साल बाद उसे आजादी मिली है। मचांग सोचता है....जब वह जेल आया होगा, उसकी उम्र क्या होगी। वह हिसाब लगाने की कोशिश करता है पर नहीं लगा पाता। मचांग को अपने घर की याद है, मां-बाप की याद है। मां के हाथ की बनी रोटियों की और पिता की फटकार की भी याद है। पर उसे यह याद नहीं कि उसके भाई-बहनों की संख्या ठीक-ठीक कितनी रही होगी। शायद उसे छोड़कर चार और....नहीं-नहीं छोटी को तो मैं भूल ही गया....शायद पांच। लेकिन एक भाई तो बचपन में बीमारी के बाद चल बसा था....तो अब चार लेकिन जब वह जेल गया था तो मां की गोद में एक नन्हा बच्चा था, उसे भी जोड़ लें तो हुए पांच। मचांग अपने भाई-बहनों की सही संख्या का अनुमान तक नहीं लगा पाता। आज आजादी मिली है लेकिन क्या करे इस आजादी का? क्या करे, कहां जाए, किससे मिले, क्या किसी को उसकी याद भी होगी? मचांग को तो कोई अफसोस भी नहीं कि वो इतने साल जेल में रहा...शायद जेल के अंदर इतने बरसों ने उसकी अनुभूतियां छीन लीं, सुख-दुख में भेद छीन लिया। उसके लिए तो जो हो रहा है इसलिए हो रहा है कि क्योंकि वो होना है।

मचांग को तो कोई अफसोस नहीं लेकिन ये जानकर शायद आपको अफसोस होगा कि मचांग को ये भी ठीक-ठीक याद

पिछले चौवन सालों में उसने सलाखों के अंदर कुछ कदम दीवार से सलाखों तक और सलाखों से दीवार तक बार-बार, बार-बार नापे हैं। इन्हीं चंद कदमों में उसकी दुनिया शुरु भी होती है और खत्म भी हो जाती है। पिछले चौवन सालों में उसकी कल्पनाएं भी जेल की खिड़की से दिखने वाले आकाश जितनी ही सीमित हो गई हैं। उसके लिए तो आकाश सिर्फ उतना ही है जितना जेल के अंदर से दिखता है। आज वह सतहत्तर साल का है।

नहीं कि वो जेल क्यों लाया गया था। जेल आने के कुछ सालों तक तो शायद याद रहा हो लेकिन अब तो उसकी यादें भी गड्ड-मड्ड हो गई हैं। हमें ये पता है कि मचांग को जेल क्यों लाया गया लेकिन इतने बरस जेल में क्यों रखा गया....ये न पूछिए। पुलिस के पास भी उसका आपराधिक रिकार्ड तो दूर, मुकदमे की कार्रवाई के रिकार्ड तक नहीं हैं। चलिए हम मचांग के केस को समझने की कोशिश करते हैं.....

हुआ यूं कि चौवन साल पहले मचांग को खतरनाक हथियार से हमला करने के आरोप में (धारा326 के तहत) गिरफ्तार किया गया। इस अपराध में अधिकतम सजा दस साल हो सकती है। तो हथियार रखने के आरोप में तेईस साल के मचांग को असम पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। बस इतना ही। उसके बाद मचांग पर कोई मुकदमा नहीं चला, कोई सुनवाई नहीं हुई, कोई सजा नहीं सुनाई गई। बस मचांग गिरफ्तार किया गया और जेल भेज दिया गया। पुलिस के दफ्तर में इस वक्त चौवन बरस पहले मचांग की गिरफ्तारी के कागज तक नहीं। क्या-क्यों-कैसे हुआ, कुछ पता नहीं। उस पर एक आरोप लगा लेकिन वो साबित नहीं हुआ क्योंकि किया ही नहीं गया। शायद आरोप साबित हो ही जाता तो बेहतर होता क्योंकि तब वो दस साल में छूट जाता, लौट पाता अपने घर, अपनी जिंदगी में।

हम आप सिर्फ अफसोस जता सकते हैं लेकिन मचांग ने व्यवस्था के इस क्रूर मजाक को जिया है। पुलिस के पास मचांग से संबंधित कोई रिकार्ड नहीं है। तब जिन अधिकारियों ने वो गलती की थी वो अब नहीं रहे। अब के अधिकारियों के लिए मचांग की जिंदगी सिर्फ एक गलती है, ज्यादा मानें तो एक भयानक गलती जो सुधारी नहीं जा सकती।

खैर ये तो बीती बात हुई। आदमी होने की एक अच्छी बात ये है कि दुख हो या सुख, वक्त के साथ सब भूल जाता है। हां वक्त कुछ नहीं भूलता, वह सब कुछ दर्ज करता चलता है। लेकिन यहां तो वक्त भी मचांग को भूल गया और मचांग वक्त को।

हां, गांव का धूमिल रास्ता याद है लेकिन रास्ते भी धुंधलके में खो जाते हैं। आजादी मिली है....गुमनाम आजादी। मचांग सोच पाता है कि चलो उस धूमिल गांव और धुंधले रास्ते को खोजा जाए। सोचता है वो अपने गांव से कितना दूर होगा, ये रास्ता कैसे पार किया जाएगा? बहुत दिनों बाद मचांग कुछ सोच रहा है। न जाने कितने सालों बाद उसके दिमाग को ये मेहनत करनी पड़ रही है। वो नक्शा बनाने की कोशिश करता है...नहीं बन पाता। मचांग की आंखों में एक चमक कौंधी जैसे तूफान के वक्त आकाश में बिजली कौंधती है। रेलगाड़ी....हां रेल जाती है उसके गांव। लेकिन कौन सी?

मचांग आते-जाते लोगों से पूछना चाहता है लेकिन वो बोल नहीं पाता। न जाने कितने सालों से वो कुछ नहीं बोला

था। मचांग एक बड़े पेड़ की ओट में चला जाता है ताकि सड़क चलते लोग उसे देख न सकें। अब वो फिर बोलने की कोशिश करता है...जबड़े को खींचकर कानों तक

फिर उसके गालों में कुछ गर्म-गर्म लगता है.....न जाने कितने सालों बाद उसकी आंखों में से आंसू निकले। उसे याद आता है कि शायद जेल में वो कभी रोया भी नहीं था। शायद जिंदगी उसके शरीर में प्रवेश कर रही थी....हालांकि ये शरीर एक 77 साल के बूढ़े का था। एक जर्जर मकान की तरह जर्जर....लेकिन ये क्या बांध से छोड़े गए पानी की तरह इस जर्जर जिस्म में भी एक धमक हुई। हां सच मानिये, ये जिंदगी का प्रवेश ही था।

ले जाता है, चेहरे-गले की रगें खिंच जाती हैं....उं-गृ-ऊं जैसी कुछ आवाज निकलती है...जुबान हिलती है, गला अंदर तक दिखता है....लेकिन वो बोल नहीं पाता।

फिर उसके गालों में कुछ गर्म-गर्म लगता है.....न जाने कितने सालों बाद उसकी आंखों में से आंसू निकले। उसे याद आता है कि शायद जेल में वो कभी रोया भी नहीं था। शायद जिंदगी उसके शरीर में प्रवेश कर रही थी....हालांकि ये शरीर एक 77 साल के बूढ़े का था। एक जर्जर मकान की तरह जर्जर....लेकिन ये क्या बांध से छोड़े गए पानी की तरह इस जर्जर जिस्म में भी एक धमक हुई। हां सच मानिये, ये जिंदगी का प्रवेश ही था।

मचांग एक बार फिर हरे पत्तों में छुपकर बोलने की कोशिश करता है। गला खोलता है, जुबान हिलाता है, फिर कोशिश करता है....फिर कोशिश करता है...फिर कोशिश करता है।

म्म्म्म्मां....आआआ। कुछ ऐसी ही ध्वनि। कुछ हुआ शायद, हां उसके कानों ने भी उसके मुंह से निकले गड्ड-मड्ड अक्षर या ध्वनि सुनी। उसने सोचा यानी कि शब्द बन सकते हैं। उसे अपने गांव का नाम याद है (.....)। वो बोलने की कोशिश करता है, खुश होता है, रोता है। लेकिन हम अभी खुश नहीं हो सकते। क्योंकि हमें अभी उसकी भाषा समझ नहीं आ रही है। हां, अगर शब्दों की जगह भावनाओं को सुनें तो शायद कुछ समझ आ पाए।

पेड़ के पीछे थोड़ी देर तक इस अभ्यास के बाद मचांग कुछ बोलने की कोशिश करता है। कुछ-कुछ बोलता है, कुछ-कुछ नहीं भी। दो दिन इसी तरह सड़क किनारे गुजर जाते हैं। फिर मचांग को ट्रेन की पटरियां दिखाई देती हैं। बस ये पटरियां पकड़ वह एक छोटे से स्टेशन तक पहुंच जाता है।

दो दिन स्टेशन पर गुजर जाते हैं....क्योंकि उसे मालूम नहीं कि कौन सी ट्रेन उसके गांव तक जाएगी। अब गांव और गांव के धुंधले रास्ते की तस्वीर उसके दिमाग में कुछ साफ हो रही है। वो तस्वीर को जोड़कर एक पूरी फिल्म बनाने की कोशिश कर रहा है। उसकी इस फिल्म में एक पौधा बार-बार आता है। मचांग देखता है कि अपने कुछ दोस्तों के साथ वो पौधा रोप रहा है....पानी दे रहा है, जानवरों से उसकी रक्षा कर रहा है। ये पौधा मचांग के दिमाग में अटक जाता है। उसे याद आता है कि उसने कल्पना की थी एक दिन ये पौधा बड़ा होकर पेड़ बनेगा, उसकी मजबूत शाखाएं होंगी। एक मौसम में उसमें फूल लगेंगे....कौन सा मौसम? अचानक उसके कानों में एक आवाज पड़ी है....एक भीड़ से आ रही आवाज।

कुछ लोग थे, कुछ नौजवान। वहीं से आवाज आई थी। एक बार फिर वही शब्द.....अरे यही तो वह शब्द है, उसके गांव का नाम। हां-हां यही शब्द तो उसके गांव का नाम है। प्लेटफार्म पर ट्रेन रुकती है। वो भीड़ ट्रेन में घुसने लगती है। मचांग डर जाता है...उन लोगों को जाता देखकर। पता नहीं वह इस शब्द को दोबारा सुन पाएगा या नहीं। शायद ये लोग उसके गांव के हों....वो अपनी पूरी शक्ति लगाकर सोचता है और पूरी समझ के साथ उस ट्रेन में उनके पीछे घुस जाता है।

ट्रेन में मचांग उसी भीड़ की बगल में डरा-सहमा बैठ जाता है। वह उस भीड़ से बात करना चाहता। लेकिन क्या बोले, गला फिर खोलता है। ट्रेन में चिल्ला भी नहीं पाता। ट्रेन चल पड़ती है। वह उनसे बातचीत की कोशिश करता है पर न जाने क्यों डर जाता है, बात नहीं कर पाता। कुछ दूरी के बाद वह एक बार फिर कोशिश करता है। उस भीड़ में जो सबसे सहज-विनम्र शक्ल उसे दिखती है, उससे मुखातिब होता है। कुछ उलझे शब्द निकालता है और इस असफल कोशिश से इस बार उसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं।

मचांग बोल नहीं पाता लेकिन उसका अनुमान ठीक लगता है। वो युवक सचमुच में विनम्र था, उसने मचांग की ओर दया भरी नजर डाली। उसे लगा कि मचांग भूखा है तो अपने साथ लाए खाने में एक रोटी उसकी तरफ बढ़ा दी। रोटी देखकर मचांग की समझ में पहले तो कुछ नहीं आया। पिछले चौवन साल में वह जेल की जली-कटी सख्त रोटियां ही खाता आया है। ये रोटी है....इतनी छोटी-मुलायम और खूबसूरत दिखती है। मचांग सोचता है कि क्या मैं इसे खा सकता हूं? थोड़ी देर तक रोटी को घूरने के बाद वो उस पर टूट पड़ता है। इस युवक को उसकी भूख का अंदाज लग जाता है...वो कुछ और खाना उसकी ओर बढ़ा देता है। भीड़ में ज्यादातर लोग सो रहे हैं लेकिन मचांग नहीं सोता। भरपेट खाने के बाद खूबसूरत नींद की दस्तक के बावजूद उसकी आंख नहीं लगती।

रोटी देखकर मचांग की समझ में पहले तो कुछ नहीं आया। पिछले चौवन साल में वह जेल की जली-कटी सख्त रोटियां ही खाता आया है। ये रोटी है....इतनी छोटी-मुलायम और खूबसूरत दिखती है। मचांग सोचता है कि क्या मैं इसे खा सकता हूं? थोड़ी देर तक रोटी को घूरने के बाद वो उस पर टूट पड़ता है। इस युवक को उसकी भूख का अंदाज लग जाता है...वो कुछ और खाना उसकी ओर बढ़ा देता है। भीड़ में ज्यादातर लोग सो रहे हैं लेकिन मचांग नहीं सोता।

एक-एक कर सबकी नींद टूटती है। वो मचांग को देखते हैं। काफी देर के सफर के बाद और मचांग की हालत देखने के बाद उन्हें मचांग से सहानुभूति होती है। वे उससे बातचीत की कोशिश करते हैं, बातचीत सफल नहीं हो पाती....लेकिन मचांग की निश्छल हंसी उन्हें भा जाती है। इस सफर की मंजिल आ

गई। नौजवान ट्रेन से उतर रहे हैं। मचांग भी इनके पीछे जल्दी-जल्दी उतरता है। इनके पीछे-पीछे ही चलता है।

उस युवक ने एक बार फिर मचांग पर निगाह डाली, पूछा कि वो क्यों उनके पीछे-पीछे चल रहा है। मचांग उस शब्द को, अपने गांव के नाम को दुहराने की कोशिश करता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि इस बार वो अपने गांव का नाम उच्चारित कर लेता है। नौजवान पूछते हैं कि वो इस गांव को कैसे जानता है तो वो इशारे से बताता है कि ये मेरा गांव है। बार-बार, कई बार वो अपने गांव का नाम दुहराता। नौजवान उसे अपने साथ आने देते हैं।

मचांग को रास्ते याद आने लगे हैं। चौवन साल का फर्क उसके गांव पर भी पड़ा है लेकिन ये गांव ज्यादा नहीं बदला। अचानक मचांग को वो रास्ता दिखता है जो उसके घर को जाता है। मचांग दौड़ पड़ता है, पूरी शक्ति के साथ। गिरता है, उठता है, दौड़ता है, रोता है, हंसता है और रुक जाता है। घर के बाहर जो पौधा रोपा था, वह पेड़ बन गया है.....उसकी शाखें फलों से लदी हैं। यह उसका पेड़ है। मचांग उस पेड़ से लिपट कर रोता है....नौजवान उसे देख रहे हैं।

यह उसका पेड़ है। कम से कम कोई तो है जो उसे पहचानता है। लेकिन उसे अपना घर नहीं दिखता, घरवाले नहीं दिखते। कहां होगा उसका घर और घरवाले? कोई बात नहीं, उसका पेड़ तो है। मचांग उसी पेड़ के नीचे रहता है। वहां से कहीं नहीं जाता। दो दिन बाद.....एक लंबी रात के बाद एक सुबह आती है। मचांग हिलता-डुलता नहीं...बस सोता है। चौवन सालों से भी लंबी नींद। मचांग सो चुका है...हमेशा के लिए। गांव में भीड़ इकट्ठा है।

मचांग की पोटली खोली जाती है। एक चिट्ठी मिलती है, चौवन साल बाद रिहा किया गया मचांग। मचांग सालों में जिसकी जिंदगी का हर लम्हा, हर पहचान जेल की चहारदीवारी के भीतर मिट गए। लेकिन एक चीज नहीं मिटी थी...उसका नाम-मचांग। गांव का एक बुजुर्ग पहचानता है उस नाम को। वो बुजुर्ग रोता है....मचांग की मौत पर...अपने बड़े भाई की मौत पर। याद करता है कि कभी इस नाम का उसका भाई हुआ करता था। उसकी मां ने बताया था...जिसकी याद में वह खाने के वक्त एक कौर पक्षियों को डाला करती थी. ये कहानी नहीं है....एक खबर है यानी कि एक सही घटना। लेकिन इसमें काफी-कुछ कल्पना शामिल है। मचांग की जिंदगी के 54 साल जेल में खत्म हो गए, यह सच है। बाकी सब उसके दर्द को महसूस करने की कोशिश है। एक और तथ्य यह है कि मचांग की मौत की कोई खबर अखबारों में नहीं छपी। हां मचांग के 54 साल बाद जेल से छूटने की खबर के बाद उसे सरकार ने एक लाख रुपये की सहायता दी थी....एक खबर छपी थी - खबर का असर की तरह। लेकिन लेखिका को लगा कि सुखद अंत यही होगा कि मचांग मर जाए और उसका कोई अपना उसके लिए रोए।

मचांग के बाद कुछ और नाम भी आए, ढूंढ कर निकाले गए। ऐसे लोग जिनकी जिंदगी भूलवश जेलों में ही दफन हो गई। लेकिन फिर लोग भूल गए.....उन्होंने दीवाली मनाई, होली मनाई, ईद मनाई और फिर स्वतंत्रता दिवस मनाया। इनमें से ज्यादातर लोग ऐसे हैं जिन्हें आजाद भारत में गुलामी का अर्थ मालूम नहीं। मचांग की कहानी से शायद उन्हें समझ आ सके कि ये क्या चीज होती है।

• वर्षा

सुबहे आजादी

यह दाग दाग उजाला, यह शब गजीदा सहर
वह इंतेजार था जिसका यह वह सहर तो नहीं
यह वह सहर तो नहीं जिसकी आरजू लेकर
चले थे यार कि मिल जाएगी कहीं न कहीं
फलक के दश्त में तारों की आखिरी मंजिल
कहीं तो होगा शबे-सुस्त मौज का साहिल
कहीं तो जाके रुकेगा सफीनये-गमे-दिल

✡✡✡

जवां लहू की पुरअसरार शाहराहों से
चले जो यार तो दामन पे कितने हाथ पड़े
पुकारती रहीं बांहें, बदन बुलाते रहे
बहुत अजीज थी लेकिन रुखे-सहर की लगन

✡✡✡

बहुत करीं था हसीनाने नूर का दामन
सुबुक सुबुक थी तमन्ना, दबी दबी थी थकन
सुना है, हो भी चुका है फिराके जुलमत-ओ-नूर
सुना है हो भी चुका है विसाले-मंजिल-ओ-गाम

✡✡✡

बदल चुका है बहुत अहले दर्द का दस्तूर
निशाते-वस्ल हलाल ओ अजाबे-हिज्र हराम
जिगर की आग, नजर की उमंग, दिल की जलन
किसी पे चारए-हिजरां का कुछ असर ही नहीं
कहां से आई निगारे सबा किधर को गई
अभी चिरागे-सरे-रह को कुछ खबर ही नहीं

✡✡✡

अभी गरानिये-शब में कमी नहीं आई
निजाते-दीदा-ओ-दिल की घड़ी नहीं आई
चले चलो कि वह मंजिल अभी नहीं आई।

बोल.......

बोल, कि सब आजाद हैं तेरे
बोल, जबां अब तक तेरी है
तेरासुतवां जिस्म है तेरा
बोल, कि जां अब तेरी है
देख कि, आहंगर की दुकां में
तुन्द हैं शोले, सुर्ख है आहन
खुलने लगे कुफ्लों के दहाने
फैला हर जंजीर का दामन
बोल, कि थोड़ा वक्त बहुत है
जिस्म ओ जबां की मौत से पहले
बोल, कि सच जिंदा है अब तक
बोल जो कुछ कहना है वह कह ले।

यह फसल उमीदों की हमदम

यह फस्ल उमीदों की हमदम
सब काट दो, बिस्मिल पौधों को
बे-आब सिसकते मत छोड़ो, सब नोच लो
बेकल फूलों को शाखों पे बिलकते मत छोड़ो
यह फसल उमीदों की हमदम
इस बार भी गारत जाएगी
सब मेहनत सुबहों-शामों की
अब के भी अकारत जाएगी
खेती के कोनों खदरों में
फिर अपने लहू की खाद भरो
फिर मिट्टी सींचो अश्कों से
फिर अगली रुत की फिक्र करो
जब फिर इस बार उजड़ना है
इस फस्ल पकी तो भर पाया
जब तक तो यही कुछ करना है।

• फैज अहमद फैज

डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन

भारत के सामने अब एक बड़ा सवाल है-अमेरिका को क्या भेजें ? कामशास्त्र वे पढ़ चुके, योगी भी देख चुके। संत देख चुके। साधु देख चुके। गांजा और चरस वहां के लड़के पी के देख चुके। भारतीय कोबरा देख लिया। जनपथ पर प्राचीन मूर्तियां भी खरीद लीं। अध्यात्म का आयात भी अमेरिका काफी कर चुका और बदले में गेहूं भी दे रहा है। हरे कृष्ण, हरे राम भी बहुत हो गया।

महेश योगी, बाल योगेश्वर, बाल भोगेश्वर आदि के बाद अब क्या हो ? मैं देशभक्त आदमी हूं। मगर मैं अमेरिकी पीढ़ी को भी जानता हूं। मैं जानता हूं, वह बोर समाज का आदमी है-याने बड़ा बोर आदमी। शेयर अपने आप डालर दे जाते हैं। घर में टेलीविजन है, दारू की बोतलें हैं। शाम को वह दस-पंद्रह आदमियों से हाऊ डु यू डू कर लेता है। पर इससे बोरियत नहीं मिटती। हनोई पर कितनी भी बम वर्षा अमेरिका करे, उत्तेजना नहीं होती। कुछ चाहिए उसे। उसे भारत से ही चाहिए।

मुझे चिंता जितनी बड़ी अमेरिका की है उतनी ही भारतीय भाइयों की। इन्हें भी कुछ चाहिए। अब हम भारतीय भाई वहां डालर और यहां रुपयों के लिए क्या ले जाएं ? रविशंकर से वे बोर हो चुके हैं। योगी, संत वगैरह भी काफी हो चुके हैं। अब उन्हें कुछ नया चाहिए-बोरियत खत्म करने और उत्तेजना के लिए। डालर देने के लिए वे तैयार हैं।

मेरा विनम्र सुझाव है कि इस बार हम भारत से डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन ले जाएं। ऐसा मिशन आज तक नहीं गया। यह नायाब चीज होगी-भारत से डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन यानी आध्यात्मिक पागलों का मिशन।

मैं जानता हूं। आप अमेरिकी कहेगा-वी हैव सीन वन। हिज नेम इज कृष्ण मेनन। (हमने एक पागल देखा है। उसका नाम कृष्ण मेनन है।)तब हमारे एजेंट कहेंगे-वह डिवाइन (आध्यात्मिक) नहीं था। और पागल भी नहीं था। इस वक्त सच्चे आध्यात्मिक पागल भारत से आ रहे हैं। मैं जानता हूं, आध्यात्मिक मिशनें स्मगलिंग करती रहती हैं पर भारत सरकार और आम भारतीयों को यह नहीं मालूम कि लोगों को स्वर्ग में भी स्मगल किया जाता है। यह अध्यात्म के डिपार्टमेंट से होता है। जिस महान देश भारत में गुजरात के एक गांव में एक आदमी ने पवित्र जल बांटकर गांव उजाड़ दिया, वह क्या अमेरिकी को स्वर्ग में स्मगल कर सकता है। तस्करी सामान की भी होती है-और आध्यात्मिक तस्करी भी होती है। कोई आदमी दाढ़ी बढ़ाकर एक चेले को लेकर अमेरिका जाए और कहे, मेरी उम्र एक हजार साल है। मैं हजार सालों से हिमालय में तपस्या कर रहा था। ईश्वर से मेरी तीन बार बातचीत हो चुकी है। विश्वासी पर साथ ही शंकालु अमेरिकी चेले से पूछेगा-क्या तुम्हारे गुरु सच बोलते हैं ? क्या इनकी उम्र सचमुच हजार साल है ? तब चेला कहेगा, मैं निश्चित नहीं कह सकता, क्योंकि मैं तो इनके साथ सिर्फ पांच सौ सालों से हूं।

यानी चेले पांच सौ साल के वैसे ही हो गए और अपनी अलग कंपनी खोल सकते हैं। तो मैं भी सोचता हूं कि सब भारतीय माल तो अमेरिका जा चुका-कामशास्त्र, अध्यात्म, योगी व साधु वगैरह। अब एक ही चीज अमेरिका भेज सकते हैं-वह है भारतीय आध्यात्मिक पागल-इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक। इसलिए मेरा सुझाव है कि इंडियन ल्यूनेटिक मिशन की स्थापना जल्दी ही होनी चाहिए। यों मेरे से बड़े-बड़े लोग इस देश में हैं। पर मैं भी भारत की सेवा के लिए और बड़े अमेरिकी भाई की बोरियत कम करने के लिए कुछ सेवा करना चाहता हूं। यों मैं जानता हूं कि हजारों सालों से हरे राम हरे कृष्ण का जप करने के बाद भी शकर सहकारी दुकान से न मिलकर ब्लैक से मिलती है-तो कुछ दिन इन अमरीकियों को राम-कृष्ण का भजन करने से क्या मिल जाएगा ? फिर भी संपन्न और पतनशील समाज के आदमी के अपने शांति और राहत के तरीके होते हैं-और अगर वे भारत से मिते हं, तो भारत का गौरव ही बढ़ता है। यों बरट्रेंड रसेल ने कहा है कि अमेरिकी समाज वह समाज है जो बर्बरता से एकदम पतन पर पहुंच गया है-वह सभ्यता की स्टेज से गुजरा ही नहीं। एक स्टेप गोल कर गया। मुझे रसेल से भी क्या मतलब ? मैं तो क्या अंतरराष्ट्रीय धंधा चालू करना चाहता हूं-डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन। दुनिया के पगले शुद्ध पगले होते हैं-भारत के पगले आध्यात्मिक होते हैं।

मैं डिवाइन ल्यूनेटिक मिशन बनाना चाहता हूं। इसके सदस्य वही लोग हो सकते हैं जो पागलखाने में न रहे हों। हमें पागलखाने के बाहर पागल चाहिए यानी वे जो सही पागल का अभिनय कर सकें। गोयी का अभिनय करना आसान है। ईश्वर का आभिनय करना भी आसान है। मगर पागल का आभिनय करना बड़ा ही कठिन है। मैं योग्य लोगों की तलाश में हूं। दो-एक प्रोफेसर मित्र मेरी नजर मे हैं जिनसे मैं मिशन में शामिल होने की अपील कर रहा हूं। मिशन बनेगा और जरूर बनेगा। अमेरिका में हमारी एजेंसी प्रचार करेगी-सी रियल इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स (सच्चे भारतीय आध्यात्मिक पागलों को देखो) हम लोगों के न्यूयार्क हवाई अड्डे पर उतरने की खबर अखबारों में छपेगी। टेलीविजन तैयार रहेगा। मिसेज राबर्ट, मिसेज सिंपसन से पूछेंगी, तुमने क्या सच्चा आध्यात्मिक भारतीय पागल देखा है ? मिसेज सिंपसन कहेंगी, नो, इज देयर वन इन दिस कंट्री, अंडर गाड ? मिसेज राबर्ट कहेंगी, हां कल ही भारतीय आध्यात्मिक पागलों का एक मिशन न्यूयार्क आ रहा है। चलो हम लोग देखेंगे, इट विल बी ए रियल स्पिरिचुयल एक्सपीरिएंस (यह एक विरल आध्यात्मिक अनुभव होगा)

न्यूयार्क हवाई अड्डे पर हमारे भारतीय पागल आध्यात्मिक मिशन के दर्शन के लिए हजारों स्त्री-पुरुष होंगे-उन्हें जीवन की रोज ही बोरियत राहत मिलेगी। हमारा स्वागत होगा। मालाएं पहनाई जाएंगी। हमारे ठहराने का बढ़िया इंतजाम होगा और तब हम लोग पागल अध्यात्म का प्रोग्राम देंगे। हर गैरपागल पहले से शिक्षित होगा कि वह सच्चे पागल की तरह कैसे नाटक करे। प्रवेश फीस 50 डालर होगी और हजारों अमेरिकी हजारों डालर खर्च करके इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स के दर्शन करने आएंगे। हमारा धंधा खूब चलेगा। मैं मिशन का अध्यक्ष हेने के नाते भाषण दूंगा, वी आर रियल इंडियन डिवाइन ल्यूनेटिक्स। आवर ऋषीज ऐंड मुनीज थाउजेंड ईयर्स एगो सेड दैट दि वे टु रियल इंटरनल पीस ऐंड साल्वेसन लाइज थ्रू ल्यूनेसी। (हम लोग भारतीय आध्यात्मिक पागल हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों साल पहले कहा था कि आंतरिक शांति और मुक्ति पागलपन से आती है। इसके बाद मेरे साथी तरह-तरह के पागलपन के करतब करेंगे और डालर बरसेंगे।

जिन लोगों को इस मिशन में शामिल होना है, वे मुझसे संपर्क करें। शर्त यह है कि वे वास्तविक पागल नहीं होने चाहिए। वास्तविक पागलों को इस मिशन में शामिल नहीं किया जाएगा- जैसे च्चे साधुओं को साधुओं की जमात शामिल नहीं किया जाता।

♦ हरिशंकर परसाई